इकाई-IV

13. खुशबू रचते हैं हाथ

रचनाकार

अरुण कमल का जन्म बिहार के रोहतास ज़िले के नासरीगंज में 15 फरवरी 1954 को हुआ। वे पटना विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे हैं। इन्हें इनकी कविताओं के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित कई अन्य पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। इन्होंने कविता-लेखन के अलावा कई पुस्तकों और रचनाओं का अनुवाद भी किया है।

अरुण कमल की प्रमुख कृतियाँ हैं: अपनी सबूत, नए इलाके में, पुतली में संसार (चारों कविता संग्रह) तथा कविता और समय (आलोचनात्मक कृति)। इनके अलावा अरुण कमल ने मायकोव्यस्की की आत्मकथा और जंगल बुक का हिंदी में और हिंदी के युवा कवियों की कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद किया, जो 'वॉयसेज' नाम से प्रकाशित हुआ।

अरुण कमल की कविताओं में नए बिंब, बोलचाल की भाषा, खड़ी बोली के अनेक लय-छंदों का समावेश है। इनकी कविताएँ जितनी आपबीती हैं, उतनी ही जनबीती भी। इनकी कविताओं में जीवन के विविध क्षेत्रों का चित्रण है। इस विविधता के कारण इनकी भाषा में भी विविधता के दर्शन होते हैं। ये बड़ी कुशलता और सहजता से जीवन-प्रसंगों को कविता में रूपांतरित कर देते हैं।

प्रस्तावना प्रसंग

बाज़ लोग जिनका कोई नहीं होता
और जो कोई नहीं होते,
कहीं के नहीं होते–
झुण्ड बाँधकर चलाते हैं फावड़े
और देखते-देखते उनके
ऊबड़-खाबड़ पैरों तक
धरती की गहराइयों से
एक दम उमड़े आते हैं
पानी के सोते।

– अनामिका

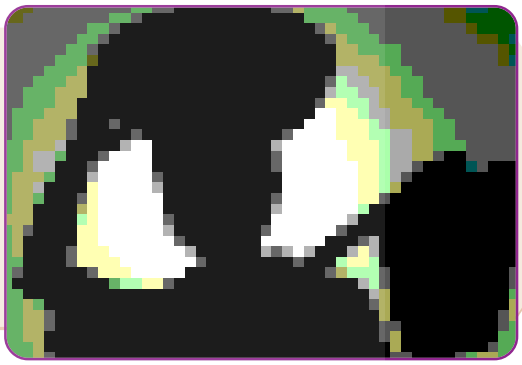

प्रश्न

1. कवि ने 'बाज़ लोग' किसे कहा है?
2. मज़दूरों का हमारे विकास में क्या योगदान रहा है?
3. मज़दूर हमारे लिए अथक परिश्रम करते हैं, फिर भी उनकी स्थिति दयनीय क्यों है?

भूमिका

प्रस्तुत कविता 'खुशबू रचते हैं हाथ' सामाजिक विषमताओं को बेनकाब करती है। यह किसकी और कैसी कारस्तानी है कि जो वर्ग समाज में सौंदर्य की सृष्टि कर रहा है और उसे खुशहाल बना रहा है, वही वर्ग अभाव में, गंदगी में जीवन बसर कर रहा है? लोगों के जीवन में सुगंध बिखेरनेवाले हाथ भयावह स्थितियों में अपना जीवन बिताने पर मजबूर हैं! क्या विडंबना है कि खुशबू रचनेवाले ये हाथ दूरदराज़ के गंदे और बदबूदार इलाकों में जीवन बिता रहे हैं। स्वस्थ समाज के निर्माण में योगदान करनेवाले ये लोग इतने उपेक्षित हैं! आखिर कब तक?

© SCERT not to be republished

कई गलियों के बीच
कई नालों के बीच
कूड़े-करकट
के ढेरों के बाद
बदबू से फटते जाते इस
टोले के अंदर
खुशबू रचते हैं हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ।

उभरी नसोंवाले हाथ
घिसे नाखूनोंवाले हाथ
पीपल के पत्ते-से नए-नए हाथ
जूही की डाल-से खुशबूदार हाथ

गंदे कटे-पिटे हाथ
ज़ख्म से फटे हुए हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ।
यही इस गली में बनती हैं
मुल्क की मशहूर अगरबत्तियाँ
इन्हीं गंदे मुहल्लों के गंदे लोग
बनाते हैं केवड़ा गुलाब खस और रातरानी
अगरबत्तियाँ
दुनिया की सारी गंदगी के बीच
दुनिया की सारी खुशबू
रचते रहते हैं हाथ

खुशबू रचते हैं हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ।

© SCERT not to be republished

प्रश्न-अभ्यास

अर्थग्राह्यता-प्रतिक्रिया

❖ विचार-विमर्श

1. हम जो कुछ भी पहनते, ओढ़ते व खाते-पीते हैं, वह हम तक बहुत लोगों के सहयोग से पहुँचता है। समाज में एक-दूसरे के सहयोग के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. हम जो खूबसूरत चीज़ें देखते हैं, ज़रूरी नहीं कि उन्हें तैयार करने वालों की ज़िंदगी भी वैसी ही खूबसूरत हो। इसके कारणों पर विचार कीजिए।

❖ पढ़ना, भाव समझना और भाव विस्तार

क. पाठ में उत्तर ढूँढ़िए।

1. कविता में कितने तरह के हाथों की चर्चा हुई है?
2. जहाँ अगरबत्तियाँ बनती हैं, वहाँ का माहौल कैसा होता है?
3. 'खुशबू रचनेवाले हाथ' कैसी परिस्थितियों में कहाँ-कहाँ रहते हैं?

ख. पाठ समझकर उत्तर दीजिए।

1. भाव स्पष्ट कीजिए।

   क. पीपल के पत्ते-से नए-नए हाथ
   जूही की डाल से खुशबूदार हाथ

   ख. 'दुनिया की सारी गंदगी के बीच
   दुनिया की सारी खुशबू
   रचते रहते हैं हाथ'

2. 'खुशबू रचते हैं हाथ' लिखने का मुख्य उद्देश्य क्या रहा होगा?
3. 'खुशबू रचते हैं हाथ' कवि ने ऐसा क्यों कहा है?

ग. पढ़ने की योग्यता का विस्तार

प्रस्तुत पद्यांश पढ़कर दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

लिखा हुआ था सीट पर- वरिष्ठ नागरिक।
पसरे हुए थे, उसमें दो बलिष्ठ नागरिक।
हमने कहा- ऐ नौजवानो! सीट छोड़िए।
आपे से बाहर हो गये वे धृष्ट नागरिक।

© SCERT not to be republished

जोश-ए-जवानी में अक्सर भूलते हैं लोग,
एक दिन उन्हें भी होना है, वरिष्ठ नागरिक।
दिल हैं उनके छोटे, और सोच उनकी तंग,
औरों को जो समझते हैं, कनिष्ठ नागरिक।
खुदगर्ज़ियों और लालचों की अंधी दौड़ में,
एक-दूसरे का कर रहे, अनिष्ट नागरिक।

प्रश्न 1. इस कविता को उचित शीर्षक दीजिए।
2. वे नौजवान आपे से बाहर क्यों हो गये?
3. आजकल वरिष्ठ नागरिकों की क्या समस्याएँ हैं?
4. आप के दृष्टिकोण से वरिष्ठ नागरिकों को क्या-क्या सुविधाएँ मिलनी चाहिए?
5. भारतीय संस्कृति में बड़े-बुजुर्गों के सम्मान को विशेष महत्व दिया गया है। स्पष्ट कीजिए।

अभिव्यक्ति-सृजनात्मकता

❖ स्वाभिव्यक्ति

क. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार-पाँच वाक्यों में लिखिए।

1. कार्यालय के कर्मचारियों एवं मज़दूरों की जीवनशैली में क्या अंतर होता है?
2. कुछ व्यवसायों में सम्मान अधिक है किंतु आमदनी कम; कुछ में आमदनी अधिक है किंतु सम्मान कम। आप किसे श्रेष्ठ मानेंगे? कारण सहित बताइए।
3. मानव के विकास में मज़दूरों का क्या योगदान है?
4. आज के मशीनी युग का प्रभाव मज़दूरों के जीवन पर किस प्रकार पड़ा है?

ख. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर आठ-दस वाक्यों में लिखिए।

1. कवि अरुण कमल ने खुशबू रचते हैं हाथ के माध्यम से किस व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ उठाने की चेष्टा की है?
2. मज़दूरों की स्थिति में सुधार लाने के लिए क्या-क्या प्रयास किए जाने चाहिए।

❖ सृजनात्मक कार्य

भारत में बढ़ती हुई बेरोज़गारी को दूर करने के लिए हस्तकलाकारों को किस प्रकार की सुविधाएँ मिलनी चाहिए, ताकि कला भी जीवित रहे और उनके जीवन स्तर में भी सुधार आए। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए 'हस्तकला का संरक्षण' विषय पर एक निबंध लिखिए।

© SCERT not to be republished

❖ प्रशंसा

इस कविता में निचले स्तर के मज़दूरों की स्थिति का चित्रण है। इस प्रकार के मज़दूर हमारे जीवन को सुखमय व सौंदर्यपूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गलियों, पार्कों व सार्वजनिक स्थलों की स्वच्छता एवं सुंदरता इन्हीं मज़दूरों से कायम है। इन अमूल्य कार्यों का महत्व समझाते हुए इन मज़दूरों के जीवन स्तर में सुधार के उपाय बताएँ।

भाषा की बात

1. पर्याय की दृष्टि से बेमेल शब्द बताइए।
   - दुनिया, विश्व, संसार, प्रकृति, जग
   - हाथ, कर, काया, हस्त, भुजा
   - कमल, जलज, राजीव, नयन, पंकज
2. पाठ में बदबू एवं खुशबू शब्द का अत्यंत सुंदर प्रयोग हुआ है। बदबू और खुशबू एक-दूसरे के विपरीतार्थी हैं। ये शब्द क्रमशः बद और खुश उपसर्ग से बने हैं। इन उपसर्गों से दो-दो अन्य शब्द बनाइए। उनका अपने वाक्यों में प्रयोग कीजए।

परियोजना कार्य

अगरबत्ती बनाना, माचिस बनाना, मोमबत्ती बनाना, लिफ़ाफ़े बनाना, पापड़ बनाना, मसाले कूटना आदि में से किन्हीं दो लघु उद्योगों के बारे जानकारी इकट्ठा कीजिए। चार्ट पर प्रस्तुत कीजिए।

© SCERT not to be republished

इकाई-IV

14. ल्हासा की ओर

रचनाकार **राहुल सांकृत्यायन** का जन्म सन् 1893 में गाँव पंदहा, ज़िला आज़मगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उनका मूल नाम केदार पांडेय था। उनकी शिक्षा काशी, आगरा और लाहौर में हुई। सन् 1930 में उन्होनें श्रीलंका जाकर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। तब से उनका नाम राहुल सांकृत्यायन हो गया। राहुल जी पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तिब्बती, चीनी, जापानी, रूसी सहित अनेक भाषाओं के जानकार थे। उन्हें महापंडित कहा जाता था। सन् 1963 में उनका देहांत हो गया।

राहुल सांकृत्यायन ने उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, जीवनी, आलोचना, शोध आदि अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन किया। इतना ही नहीं उन्होंने अनेक ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद भी किया। मेरी जीवन यात्रा (छह भाग), दर्शन-दिग्दर्शन, बाइसवीं सदी, वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दिमागी गुलामी, घुमक्कड़ शास्त्र उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। साहित्य के अलावा दर्शन, राजनीति, धर्म, इतिहास, विज्ञान आदि विभिन्न विषयों पर राहुल जी द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या लगभग 150 है। राहुल जी ने बहुत सी लुप्तप्राय सामग्री का उद्धार कर अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है।

यात्रावृत्त लेखन में राहुल जी का स्थान अन्यतम है। उन्होनें घुमक्कड़ी का शास्त्र रचा और उससे होने वाले लाभों का विस्तार से वर्णन करते हुए मंजिल के स्थान पर यात्रा को ही घुमक्कड़ का उद्देश्य बताया। घुमक्कड़ी से मनोरंजन, ज्ञानवर्धन एवं अज्ञात स्थलों की जानकारी के साथ-साथ भाषा एवं संस्कृति का भी आदान-प्रदान होता है। राहुल जी ने विभिन्न स्थानों के भौगोलिक वर्णन के अतिरिक्त वहाँ के जन-जीवन की सुंदर झाँकी प्रस्तुत की है।

प्रस्तावना प्रसंग

ज्यौं निकलकर बादलों की गोद से
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी।
सोचने फिर-फिर यही मन में लगी
आह क्यों घर छोड़कर मैं यों बढ़ी।...

बह गई उस काल कुछ ऐसी हवा
वह समुंदर ओर आई अनमनी।
एक सुंदर सीप का मुँह था खुला
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी।

– हरिऔध

प्रश्न

1. बूँद को क्या चिन्ता थी?
2. घर से निकलकर बूँद मोती बन गई। यदि वह घर से न निकलती तो क्या होता?
3. साहस करके घर से बाहर निकलनेवाले लोग ही कुछ कर पाते हैं। स्पष्ट कीजिए।

भूमिका

संकलित अंश राहुल जी की प्रथम तिब्बत यात्रा से लिया गया है जो उन्होनें सन् 1929-30 में नेपाल के रास्ते की थी। उस समय भारतीयों को तिब्बत यात्रा की अनुमति नहीं थी, इसलिए उन्होंने यह यात्रा एक भिखमंगे के छद्म वेश में की थी। इसमें तिब्बत की राजधानी ल्हासा की ओर जाने वाले दुर्गम रास्तों का वर्णन उन्होनें बहुत ही रोचक शैली में किया है। इस यात्रा-वृत्तांत से हमें उस समय के तिब्बती समाज के बारे में भी जानकारी मिलती है।

© SCERT not to be republished

वह नेपाल से तिब्बत जाने का मुख्य रास्ता है। फरी-कलिङ्पोङ् का रास्ता जब नहीं खुला था, तो नेपाल ही नहीं हिंदुस्तान की भी चीज़ें इसी रास्ते तिब्बत जाया करती थीं। यह व्यापारिक ही नहीं सैनिक रास्ता भी था, इसीलिए जगह-जगह फ़ौजी चौकियाँ और किले बने हुए हैं, जिनमें कभी चीनी पलटन रहा करती थी। आजकल बहुत से फ़ौजी मकान गिर चुके हैं। दुर्ग के किसी भाग में, जहाँ किसानों ने अपना बसेरा बना लिया है, वहाँ घर कुछ आबाद दिखाई पड़ते हैं। ऐसा ही परित्यक्त एक चीनी किला था। हम वहाँ चाय पीने के लिए ठहरे। तिब्बत में यात्रियों के लिए बहुत सी तकलीफ़ें भी हैं और कुछ आराम की बातें भी। वहाँ जाति-पाँति, छुआछूत का सवाल ही नहीं है और न औरतें परदा ही करती हैं। बहुत निम्न श्रेणी के भिखमंगों को लोग चोरी के डर से घर के भीतर नहीं आने देते; नहीं तो आप बिलकुल घर के भीतर चले जा सकते हैं। चाहे आप बिलकुल अपरिचित हों, तब भी घर की बहू या सासु को अपनी झोली में से चाय दे सकते हैं। वह आपके लिए उसे पका देगी। मक्खन और सोडा-नमक दे दीजिए, वह चाय चोङी में कूटकर उसे दूधवाली चाय के रंग की बना के मिट्टी के टोंटीदार बरतन (खोटी) में रखके आपको दे देगी। यदि बैठक की जगह चूल्हे से दूर है और आपको डर है कि सारा मक्खन आपकी चाय में नहीं पड़ेगा, तो आप खुद जाकर चोङी मे चाय मथकर ला सकते हैं। चाय का रंग तैयार हो जाने पर फिर नमक-मक्खन डालने की ज़रूरत होती है।

परित्यक्त चीनी किले से जब हम चलने लगे, तो एक आदमी राहदारी माँगने आया हमने वह दोनों चिटें उसे दे दीं। शायद उसी दिन हम थोङ्ला के पहले के आखिरी गाँव में पहुँच गए। यहाँ भी सुमति के जान-पहचान के आदमी थे और भिखमंगे रहते भी ठहरने के लिए अच्छी जगह मिली। पाँच साल बाद हम इसी रास्ते लौटे थे और भिखमंगे नहीं, एक भद्र यात्री के वेश में घोड़ों पर सवार होकर आए थे; किंतु उस वक्त किसी ने हमें रहने के लिए जगह नहीं दी, और हम गाँव के एक सबसे गरीब झोपड़े मे ठहरे थे। बहुत कुछ लोगों की उस वक्त की मनोवृत्ति पर ही निर्भर है, खासकर शाम के वक्त छङ् पीकर बहुत कम होश-हवास को दुरुस्त रखते हैं।

अब हमें सबसे विकट डाँड़ा थोङ्ला पार करना था। डाँड़े तिब्बत में सबसे खतरे की जगहें हैं। सोलह-सत्रह हज़ार फीट की ऊँचाई होने के कारण उनके दोनों तरफ़ मीलों तक कोई गाँव-गिराव नहीं होते। नदियों के मोड़ और पहाड़ों

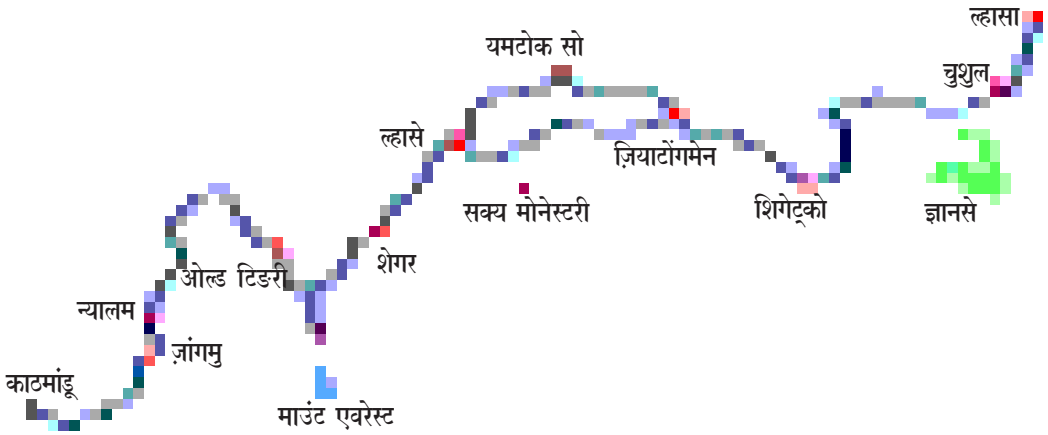

के कोनों के कारण बहुत दूर तक आदमी को देखा नहीं जा सकता। डाकुओं के लिए यही सबसे अच्छी जगह है। तिब्बत में गाँव में आकर खून हो जाए, तब तो खूनी को सज़ा भी मिल सकती है, लेकिन इन निर्जन स्थानों में मरे हुए आदमियों के लिए कोई परवाह नहीं करता। सरकार खुफ़िया-विभाग और पुलिस पर उतना खर्च नहीं करती और वहाँ गवाह भी तो कोई नहीं मिल सकता। डकैत पहिले आदमी को मार डालते हैं, उसके बाद देखते हैं कि कुछ पैसा है कि नहीं। हथियार का कानून न रहने के कारण यहाँ लाठी की तरह लोग पिस्तौल, बंदूक लिए फिरते हैं। डाकू यदि जान से न मारे तो खुद उसे अपने प्राणों का खतरा है। गाँव में हमें मालूम हुआ कि पिछले ही साल थोङ्ला के पास खून हो गया। शायद खून की हम उतनी परवाह नहीं करते, क्योंकि हम भिखमंगे थे और जहाँ-कहीं वैसी सूरत देखते, टोपी उतार जीभ निकाल, ''कुची-कुची (दया-दया) एक पैसा'' कहते भीख माँगने लगते। लेकिन पहाड़ की ऊँची चढ़ाई थी, पीठ पर सामान लादकर कैसे चलते? और अगला पड़ाव 16-17 मील से कम नहीं था। मैंने सुमति से कहा कि यहाँ से लङ्कोर तक के लिए दो घोड़े कर लो, सामान भी रख लेंगे और चढ़े चलेंगें।

दूसरे दिन हम घोड़ों पर सवार होकर ऊपर की ओर चले। डाँड़े से पहिले एक जगह चाय पी और दोपहर के वक्त डाँड़े के ऊपर जा पहुँचे। हम समुद्रतल से 17-18 हज़ार फीट ऊँचे खड़े थे। हमारी दक्खिन तरफ़ पूरब से पच्छिम की ओर हिमालय के हज़ारों श्वेत शिखर चले गए थे। भीटे की ओर दीखने वाले पहाड़ बिलकुल नंगे थे, न वहाँ बरफ़ की सफ़ेदी थी, न किसी तरह की हरियाली। उत्तर की तरफ़ बहुत कम बरफ़ वाली चोटियाँ दिखाई पड़ती थीं। सर्वोच्च स्थान पर डाँड़े के देवता का स्थान था, जो पत्थरों के ढेर, जानवरों की सींगों और रंग-बिरंगे कपड़े की झंडियों से सजाया गया था। अब हमें बराबर उतराई पर चलना था। चढ़ाई तो कुछ दूर थोड़ी मुश्किल थी, लेकिन उतराई बिलकुल नहीं। शायद दो-एक और सवार साथी हमारे साथ चल रहे थे। मेरा घोड़ा कुछ धीमे चलने लगा। मैंने समझा कि चढ़ाई की थकावट के कारण ऐसा कर रहा है, और उसे मारना नहीं चाहता था। धीरे-धीरे वह बहुत पिछड़ गया और मैं दोन्क्विक्स्तो की तरह अपने घोड़े पर झूमता हुआ चला जा रहा था। जान नहीं पड़ता था कि घोड़ा आगे जा रहा है या पीछे। जब मैं ज़ोर देने लगता, तो वह सुस्त पड़ जाता। एक जगह दो रास्ते फूट रहे थे, मैं बाएँ का रास्ता ले मील-डेढ़ मील चला गया। आगे एक घर में पूछने से पता लगा कि लङ्कोर का रास्ता दाहिने वाला था। फिर लौटकर उसी को पकड़ा। चार-पाँच बजे के करीब मैं गाँव से मील-भर पर

था, तो सुमति इंतज़ार करते हुए मिले। मंगोलों का मुँह वैसे ही लाल होता है और अब तो वह पूरे गुस्से में थे। उन्होंने कहा- ''मैंने दो टोकरी कंडे फूँ डाले, तीन-तीन बार चाय को गरम किया।'' मैंने बहुत नरमी से जवाब दिया- ''लेकिन मेरा कसूर नहीं है मित्र! देख नहीं रहे हो, कैसा घोड़ा मुझे मिला है! मैं तो रात तक पहुँचने की उम्मीद रखता था।'' खैर, सुमति को जितनी जल्दी गुस्सा आता था, उतनी ही जल्दी ठंडा भी हो जाता था। लङ्कोर में वह एक अच्छी जगह पर ठहरे थे। यहाँ भी उनके अच्छे यजमान थे। पहिले चाय-सत्तू खाया गया, रात को गरमागरम थुक्पा मिला।

अब हम तिङ्री के विशाल मैदान में थे, जो पहाड़ों से घिरा टापू-सा मालूम होता था, जिसमें दूर एक छोटी-सी पहाड़ी मैदान के भीतर दिखाई पड़ती है। उसी पहाड़ी का नाम है तिङरी-समाधि-गिरि। आसपास के गाँव में भी सुमति के कितने ही यजमान थे, कपड़े की पतली-पतली चिरी बत्तियों के गंडे खतम नहीं हो सकते थे, क्योंकि बोधगया से लाए कपड़े के खतम हो जाने पर किसी कपड़े से बोधगया का गंडा बना लेते थे। वह अपने यजमानों के पास जाना चाहते थे। मैंने सोचा, यह तो हफ्ता-भर उधर ही लगा देंगें। मैंने उनसे कहा कि जिस गाँव में ठहरना हो, उसमें भले की गंडे बाँट दो, मगर आसपास के गाँवों में मत जाओ; इसके लिए मैं तुम्हें ल्हासा पहुँचकर रुपये दे दूँगा। सुमति ने स्वीकार किया। दूसरे दिन हमने भरिया ढूँढ़ने की कोशिश की, लेकिन कोई न मिला। सवेरे ही चल दिए होते तो अच्छा था, लेकिन अब 10-11 बजे की तेज़ धूप में चलना पड़ रहा था। तिब्बत की धूप भी बहुत कड़ी मालूम होती है, यद्यपि थोड़े से भी मोटे कपड़े से सिर को ढाँक लें, तो गरमी खतम हो जाती है। आप 2 बजे सूरज की ओर मुँह करके चल रहे हैं, ललाट धूप से जल रहा है और पीछे का कंधा बरफ़ हो रहा है। फिर हमने पीठ पर अपनी-अपनी चीज़ें लादीं, डंडा हाथ में लिया और चल पड़े। यद्यपि सुमति के परिचित तिङ्री में भी थे, लेकिन वह एक और यजमान से मिलना चाहते थे, इसलिए आदमी मिलने का बहाना कर शेकर विहार का ओर चलने के लिए कहा। तिब्बत की ज़मीन बहुत अधिक छोटे-बड़े जागीरदारों में बँटी है। इन जागीरों का बहुत ज़्यादा हिस्सा मठों (विहारों) के हाथ में है। अपनी-अपनी जागीर में हर एक जागीरदार कुछ खेती खुद भी कराता है, जिसके लिए मज़दूर बेगार में मिल जाते हैं। खेती का इंतज़ाम देखने के लिए वहाँ कोई भिक्षु भेजा जाता है, जो जागीर के आदमियों के लिए राजा से कम नहीं होता। शेकर की खेती के मुखिया भिक्षु (नम्से) बड़े भद्र पुरुष थे। वह बहुत प्रेम से मिले, हालाँकि उस वक्त मेरा भेष ऐसा नहीं था कि उन्हें कुछ खयाल करना चाहिए था। यहाँ एक अच्छा मंदिर था जिसमें कन्जुर (बुद्धवचन-अनुवाद) की हस्तलिखित 103 पोथियाँ रखी हुई थीं, मेरा आसन भी वहीं लगा। वह बड़े मोटे कागज़ पर अच्छे

© NCERT not to be republished

अक्षरों में लिखी हुई थीं, एक-एक पोथी 15-15 सेर से कम नहीं रही होगी। सुमति ने फिर आसपास अपने यजमानों के पास जाने के बारे में पूछा, मैं अब पुस्तकों के भीतर था, इसलिए मैंने उन्हें जाने के लिए कह दिया। दूसरे दिन वह गए। मैंने समझा था 2-3 दिन लगेंगे, लेकिन वह उसी दिन दोपहर बाद चले आए। तिङ्री गाँव वहाँ से बहुत दूर नहीं था। हमने अपना-अपना सामान पीठ पर उठाया और भिक्षु नम्से से विदाई लेकर चल पड़े।

प्रश्न-अभ्यास

अर्थग्राह्यता-प्रतिक्रिया

❖ विचार-विमर्श

1. यदि आपको मौका मिले तो आप किस क्षेत्र की यात्रा पर जाना चाहेंगे? क्यों? यह प्रश्न अपने मित्रों से भी पूछिए।
2. "हालाँकि उस वक्त मेरा भेष ऐसा नहीं था कि उन्हें कुछ भी खयाल करना चाहिए था।"-उक्त कथन के अनुसार हमारे आचार-व्यवहार के तरीके वेशभूषा के आधार पर तय होते हैं। आपकी समझ से यह उचित है अथवा अनुचित? विचार व्यक्त करें।
3. क्या आपके किसी परिचित को घुमक्कड़ी/यायावरी का शौक है? उसके इस शौक का उसकी पढ़ाई/काम पर क्या प्रभाव पड़ता होगा? चर्चा कीजिए।

❖ पढ़ना, भाव समझना और भाव विस्तार

क. पाठ में उत्तर ढूँढ़िए।

1. इनसे संबंधित पंक्तियाँ पाठ में ढूँढ़कर लिखिए।
   - नेपाल-तिब्बत मार्ग
   - डाँड़ा थोङ्ला का वन
   - तिब्बत की तेज़ धूप
2. लेखक लङ्कोर के मार्ग में अपने साथियों से किस प्रकार पिछड़ गए?
3. लेखक ने शेकर विहार में सुमति को उनके यजमानों के पास जाने से रोका, परंतु दूसरी बार रोकने का प्रयास क्यों नहीं किया?

ख. पाठ समझकर उत्तर दीजिए।

1. थोङ्ला के पहले आखिरी गाँव पहुँचने पर भिखमंगे के वेश में होने के बावजूद लेखक को ठहरने के लिए उचित स्थान मिला जबकि दूसरी यात्रा के समय भद्र वेश भी उन्हें उचित स्थान नहीं दिला सका। क्यों?
2. उस समय तिब्बत में हथियार का कानून न रहने के कारण यात्रियों को किस प्रकार का भय रहता था?
3. अपनी यात्रा के दौरान लेखक को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?
4. प्रस्तुत यात्रा-वृत्तांत के आधार पर बताइए कि उस समय तिब्बती समाज कैसा था?

ग. पढ़ने की योग्यता का विस्तार

प्रस्तुत गद्यांश पढ़कर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

आम दिनों में समुद्र किनारे के इलाके बेहद सुंदर लगते हैं। समुद्र लाखों लोगों को भोजन देता है और लाखों उससे जुड़े दूसरे कारोबारों में लगे हैं। दिसंबर 2004 को सुनामी या समुद्री भूकंप से उठने वाली तूफ़ानी लहरों के प्रकोप ने एक बार फिर साबित कर दिया है कि कुदरत की देन सबसे बड़े विनाश का कारण भी बन सकती है।

प्रकृति कब अपने ही ताने-बाने को उलट कर रख देगी, कहना मुश्किल है। हम उसके बदलते मिज़ाज को उसका कोप कह लें या कुछ और, मगर यह अबूझ पहेली अकसर हमारे विश्वास के चीथड़े कर देती है और हमें यह अहसास करा जाती है कि हम एक कदम आगे नहीं, चार कदम पीछे हैं। एशिया के एक बड़े हिस्से में आनेवाले उस भूकंप ने कई द्वीपों को इधर-उधर खिसकाकर एशिया का नक्शा ही बदल डाला। प्रकृति ने पहले भी अपनी ही दी हुई कई अद्भुत चीज़ें इंसान से वापस ले ली हैं जिसकी कसक अभी तक है।

दुख जीवन को माँजता है, उसे आगे बढ़ने का हुनर सिखाता है। वह हमारे जीवन में ग्रहण लाता है, ताकि हम पूरे प्रकाश की अहमियत जान सकें और रोशनी को बचाए रखने के लिए जतन करें। इस जतन से सभ्यता और संस्कृति का निर्माण होता है। सुनामी के कारण दक्षिण भारत और विश्व के अन्य देशों में जो पीड़ा हम देख रहे हैं, उसे निराशा के चश्मे से न देखें। ऐसे समय में भी मेघना, अरुण और मैगी जैसे बच्चे हमारे जीवन में जोश, उत्साह और शक्ति भर देते हैं। 13 वर्षीय मेघना और अरुणा दो दिन अकेले खारे समुद्र में तैरते हुए जीव-जंतुओं से मुकाबला करते हुए किनारे आ लगे। इंडोनेशिया की रिजा पड़ोसी के दो बच्चों को पीठ पर लादकर पानी के बीच तैर रही थी कि एक विशालकाय साँप ने उसे किनारे का रास्ता दिखाया। मछुवारे की बेटी मैगी ने रविवार को समुद्र का भयंकर शोर सुना, उसकी शरारत को समझा, तुरंत अपना बेड़ा उठाया और अपने परिजनों को उसमें बिठाकर उतर आई समुद्र में, 41 लोगों को लेकर। महज 18 साल की यह जलपरी चल पड़ी पगलाए सागर से दो-दो हाथ करने। दस मीटर

© NCERT not to be republished

से ज़्यादा ऊँची सुनामी लहरें जो कोई बाधा, रुकावट मानने को तैयार नहीं थीं, इस लड़की के बुलंद इरादों के सामने बौनी ही साबित हुईं।

जिस प्रकृति ने हमारे सामने भारी तबाही मचाई है, उसी ने हमें ऐसी ताकत और सूझ दे रखी है कि हम फिर से खड़े होते हैं और चुनौतियों से लड़ने का रास्ता ढूँढ़ निकालते हैं। इस त्रासदी से पीड़ित लोगों की सहायता के लिए जिस तरह पूरी दुनिया एकजुट हुई है, वह इस बात का सबूत है कि मानवता हार नहीं मानती।

प्रश्न 1. कौन-सी आपदा को सुनामी कहा जाता है?

2. 'दुख जीवन को माँजता है, उसे आगे बढ़ने का हुनर सिखाता है।' आशय स्पष्ट कीजिए।
3. मैगी, मेघना और अरुण ने सुनामी जैसी आपदा का सामना किस प्रकार किया?
4. प्रस्तुत गद्यांश में 'दृढ़ निश्चय' और 'महत्व' के लिए किन शब्दों का प्रयोग हुआ है?
5. इस गद्यांश का एक शीर्षक नाराज़ समुद्र हो सकता है। आप कोई अन्य शीर्षक दीजिए।

अभिव्यक्ति-सृजनात्मकता

❖ स्वाभिव्यक्ति

क. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार-पाँच वाक्यों में लिखिए।

1. सुमति के यजमान और अन्य परिचित लोग लगभग हर गाँव में मिले। इस आधार पर आप सुमति के व्यक्तित्व की किन विशेषताओं का चित्रण कर सकते हैं?
2. पहाड़ी क्षेत्रों में यातायात के साधन कम होते हैं। होते भी हैं तो अनोखे। इस बारे में अपने विचार लिखिए।
3. लेखक ने यह यात्रा सन् 1929-30 में की थी। वर्तमान समय में यदि तिब्बत की यात्रा की जाए तो राहुल जी की यात्रा कैसे भिन्न होगी?
4. यात्रा-वृत्तांत के आधार पर तिब्बत की भूमि का शब्द चित्र प्रस्तुत करें। वहाँ की स्थिति आपके राज्य या शहर से किस प्रकार भिन्न है?

ख. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर आठ-दस वाक्यों में लिखिए।

1. इस यात्रा-वृत्तांत के आधार पर लेखक के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए।
2. यात्रा-वृत्तांत गद्य साहित्य की एक विधा है। आपकी इस पाठ्यपुस्तक में कौन-कौनसी विधाएँ हैं? प्रस्तुत विधा उनसे किन मायनों में अलग है?

❖ सृजनात्मक कार्य

आपने भी किसी स्थान की यात्रा अवश्य की होगी? यात्रा के दौरान हुए अनुभवों को यात्रा-वृत्तांत रूप में लिखकर प्रस्तुत करें।

© SCERT not to be republished

❖ प्रशंसा

पर्यटन यात्राएँ ज़रूरी नहीं की सुखद ही हों। कुछ यात्राएँ कष्टकारी भी होती हैं। लेकिन राहों की चुनौतियाँ यात्रा के रोमांच को बढ़ा देती हैं। अनुमान लगाइए कि लोग साहसिक यात्राएँ क्यों करते होंगे?

भाषा की बात

1. 'मैं अब पुस्तकों के भीतर था।' नीचे दिए गए विकल्पों में से कौनसा इस वाक्य का अर्थ बतलाता है–

   क. लेखक पुस्तकें पढ़ने में रम गया।

   ख. लेखक पुस्तकों के शैल्फ़ के भीतर चला गया।

   ग. लेखक के चारों ओर पुस्तकें ही थीं।

   घ. पुस्तक में लेखक का परिचय व चित्र छपा था।

2. किसी भी बात को अनेक प्रकार से कहा जा सकता है, जैसे–

   – सुबह होने से पहले हम गाँव में थे।

   – पौ फटने वाली थी कि हम गाँव में थे।

   – तारों की छाँव रहते-रहते हम गाँव पहुँच गए।

   नीचे दिए गए वाक्य को अलग-अलग तरीके से लिखिए–

   जान नहीं पड़ता था कि घोड़ा आगे जा रहा है या पीछे।

3. ऐसे शब्द जो किसी अंचल यानी क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त होते हैं उन्हें आंचलिक शब्द कहा जाता है। प्रस्तुत पाठ में से आंचलिक शब्द ढूँढ़कर लिखिए।

4. पाठ में कागज़, अक्षर, मैदान के आगे क्रमशः मोटे, अच्छे और विशाल शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों से उनकी विशेषता उभर कर आती है। पाठ में से कुछ ऐसे ही शब्द छाँटिए जो किसी की विशेषता बता रहे हों।

परियोजना कार्य

किसी एक पर्यटन स्थल का चित्र एवं उससे संबंधित जानकारी प्राप्त कीजिए। उसके बारे में लिखिए।

© NCERT not to be republished

इकाई-IV

15. बच्चे काम पर जा रहे हैं

रचनाकार

राजेश जोशी का जन्म सन् 1946 में मध्य प्रदेश के नरसिंहगढ़ ज़िले में हुआ। उन्होंने शिक्षा पूरी करने के बाद पत्रकारिता शुरू की और कुछ सालों तक अध्यापन किया। राजेश जोशी ने कविताओं के अलावा कहानियाँ, नाटक, लेख और टिप्पणियाँ भी लिखीं। साथ ही उन्होंने कुछ नाट्य रूपांतर भी किए हैं। कुछ लघु फिल्मों के लिए पटकथा लेखन का कार्य भी किया। उन्होंने भर्तृहरि की कविताओं की अनुरचना **भूमि का कल्पतरू यह भी** एवं मायकोवस्की की कविता का अनुवाद **पतलून पहिना बादल** नाम से किया है। कई भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेज़ी, रूसी और जर्मन में भी राजेश जी की कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

राजेश जोशी के प्रमुख काव्य संग्रह हैं- **एक दिन बोलेंगे पेड़, मिट्टी का चेहरा, नेपथ्य में हँसी** और **दो पंक्तियों के बीच**। उन्हें माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, मध्य प्रदेश शासन का शिखर सम्मान और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

राजेश जोशी की कविताएँ गहरे सामाजिक अभिप्राय वाली होती हैं। वे जीवन के संकट में भी गहरी आस्था को उभारती हैं। उनकी कविताओं में स्थानीय बोली-बानी, मिज़ाज और मौसम सभी कुछ व्याप्त हैं। उनके काव्यलोक में आत्मीयता और लयात्मकता है तथा मनुष्यता को बचाए रखने का एक निरंतर संघर्ष भी। दुनिया के नष्ट होने का खतरा राजेश जोशी को जितना प्रबल दिखाई देता है, उतना ही वे जीवन की संभावनाओं की खोज के लिए बेचैन दिखाई देते हैं।

प्रस्तावना प्रसंग

बाल मज़दूर
होटलों में काम करते,
सड़कों पर गाड़ी धोते,
भीख माँगते, बोझ ढोते,
कचड़ा बीनते, कपड़ा बूनते,
गंदे मटमैले चीथड़ों में
कभी घृणा से, कभी करुणा से,
देखा होगा तुमने मुझे अनजाने में।

प्रश्न

1. कविता में बाल मज़दूर क्या कह रहा है?
2. बालकों से मज़दूरी क्यों नहीं करवानी चाहिए?
3. बाल मज़दूरी समाप्त करने के लिए आप क्या करना चाहेंगे?

भूमिका

प्रस्तुत कविता में बच्चों से बचपन छीन लिए जाने की पीड़ा व्यक्त हुई है। कवि ने उस सामाजिक-आर्थिक विडंबना की ओर इशारा किया है जिसमें कुछ बच्चे खेल, शिक्षा और जीवन की उमंग से वंचित हैं।

© NCERT not to be republished

कोहरे से ढँकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं
सुबह सुबह

बच्चे काम पर जा रहे हैं

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह

काम पर क्यों जा रहें हैं बच्चे?

क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें
क्या दीमकों ने खा लिया है
सारी रंग बिरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गए हैं सारे खिलौने

क्या किसी भूकंप में ढह गई हैं
सारे मदरसों की इमारतें

क्या सारे मैदान, सारे बगीचे और घरों के आँगन
खत्म हो गए हैं एकाएक
तो फिर बचा ही क्या है इस दुनिया में?
कितना भयानक होता अगर ऐसा होता
भयानक है लेकिन इससे भी ज़्यादा यह
कि हैं सारी चीजें हस्बमामूल

पर दुनिया की हज़ारों सड़कों से गुज़रते हुए
बच्चे, बहुत छोटे-छोटे बच्चे
काम पर जा रहे हैं।

© NCERT not to be republished

प्रश्न-अभ्यास

अर्थग्राह्यता-प्रतिक्रिया

❖ विचार-विमर्श

1. वर्तमान युग में सभी बच्चों के लिए खेलकूद और शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हैं। इस विषय पर वाद-विवाद आयोजित कीजिए।
2. कहा जाता है कि बच्चे देश का भविष्य होते हैं। अतः बच्चों का भविष्य देश का भविष्य है। बच्चों की अशिक्षा देश के भविष्य को किस प्रकार प्रभावित कर सकती है? चर्चा कीजिए।

❖ पढ़ना, भाव समझना और भाव विस्तार

क. पाठ में उत्तर ढूँढ़िए।

1. कविता की पहली दो पंक्तियों को पढ़ने तथा विचार करने से आपके मन-मस्तिष्क पर जो चित्र उभरता है उसे लिखकर व्यक्त कीजिए।
2. कवि ने इस कविता में कौन-कौन सी भयानक परिस्थितियों की बात कही है? क्यों?

ख. पाठ समझकर उत्तर दीजिए।

1. भाव स्पष्ट कीजिए।

क. हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?

ख. भयानक है लेकिन इससे भी ज़्यादा यह
कि हैं सारी चीज़ें हस्बमामूल
पर दुनिया की हज़ारों सड़कों से गुजरते हुए
बच्चे, बहुत छोटे-छोटे बच्चे
काम पर जा रहे हैं।

2. कवि का मानना है कि बच्चों के काम पर जाने की भयानक बात को विवरण की तरह न लिखकर सवाल के रूप में पूछा जाना चाहिए कि काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे? कवि की दृष्टि से उसे प्रश्न के रूप में क्यों पूछना चाहिए।
3. बच्चों का काम पर जाना धरती के एक बड़े हादसे के समान क्यों है?

© SCERT not to be republished

ग. पढ़ने की योग्यता का विस्तार

कविता पढ़कर दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

वह आता

दो टूक कलेजे के करता पछताता

पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लकुटिया टेक,

मुट्ठी भर दाने को

भूख मिटाने को

मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता

पथ पर आता।

साथ में दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,

बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,

और दाहिना दया दृष्टि-पाने की ओर बढ़ाए।

भूख से सूख ओठ जब जाते,

दाता-भाग्य-विधाता से क्या पाते?

घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,

और झपट पड़ने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

1. भिक्षुक की दशा कैसी है?
2. भिक्षुक के भीख माँगने के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?
3. "भूख से सूख ओठ जब जाते,
   दाता-भाग्य-विधाता से क्या पाते?" भाव स्पष्ट कीजिए।
4. भीख माँगते समय भिखारी के बच्चों के मन में क्या-क्या विचार आते होंगे?
5. आप ऐसे गरीबों की सहायता किस प्रकार करना चाहेंगे?

© SCERT not to be republished

अभिव्यक्ति–सृजनात्मकता

❖ स्वाभिव्यक्ति

I. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार–पाँच वाक्यों में लिखिए।**

1. सुविधा और मनोरंजन के उपकरणों से सभी बच्चे क्यों वंचित हैं?
2. दिन–प्रतिदिन के जीवन में हर कोई बच्चों को काम पर जाते देख रहा है, फिर भी किसी को कुछ अटपटा सा नहीं लगता। इस उदासीनता के क्या कारण हो सकते हैं?
3. आपने अपने शहर में बच्चों को कब–कब और कहाँ–कहाँ काम करते हुए देखा है?
4. काम पर जाते हुए बच्चे के स्थान पर अपने–आप को रखकर देखिए। आपको जो महसूस होता है उसे लिखिए।

II. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर आठ–दस वाक्यों में लिखिए।**

1. आज बहुत से ऐसे सरकारी आवासीय विद्यालय हैं, जहाँ बच्चों के लिए मुफ़्त खाने, रहने व पढ़ने की व्यवस्था है। सोचिए और बताइए कि किन कारणों से गरीबों के बच्चे ऐसे विद्यालयों का लाभ नहीं उठा पाते?
2. आपके विचार से बच्चों को काम पर क्यों नहीं भेजा जाना चाहिए? उन्हें क्या करने के मौके होने चाहिए?

❖ सृजनात्मक कार्य

बाल श्रम की रोकथाम पर नाटक तैयार कर उसकी प्रस्तुति कीजिए।

❖ प्रशंसा

आज बच्चों के अधिकारों के लिए बच्चों व बड़ों सबमें जागरूकता आ रही है। इसके लिए कानून भी बनाए गए हैं। ऐसे कानूनों से समाज को क्या लाभ होगा?

भाषा की बात

1. इस कविता में अनेक प्रकार से प्रश्न पूछे गए हैं। इससे पता चलता है कि प्रश्न पूछना भी एक कला है। इससे भी भाषा में सौंदर्य उत्पन्न होता है। पाठ में आए प्रश्न रेखांकित कीजिए। उन्हें अलग–अलग तरह से पूछिए। कुछ अन्य सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में ऐसे ही कलात्मक प्रश्नों का निर्माण कीजिए।

परियोजना कार्य

बाल श्रम की रोकथाम के लिए लोगों के सुझाव जानने के लिए दस प्रश्न बनाइए। अपने मित्रों से इनके उत्तर पूछिए। उनके उत्तर संक्षिप्त में लिखिए।

© SCERT not to be republished

इकाई-IV

16. मेरे बचपन के दिन

रचनाकार

महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में उत्तर प्रदेश के फ़रूखाबाद शहर में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रयाग में हुई। प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्राचार्या पद पर लंबे समय तक कार्य करते हुए उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के लिए काफ़ी प्रयत्न किए। सन् 1987 में उनका देहांत हो गया।

महादेवी जी छायावाद के प्रमुख कवियों में से एक थीं। नीहार, रश्मि, नीरजा, यामा, दीपशिखा उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। कविता के साथ-साथ उन्होंने सशक्त गद्य रचनाएँ भी की हैं जिनमें रेखाचित्र तथा संस्मरण प्रमुख हैं। अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी, श्रृंखला की कड़ियाँ उनकी महत्वपूर्ण गद्य रचनाएँ हैं। महादेवी वर्मा को साहित्य अकादमी एवं ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया।

महादेवी वर्मा की साहित्य साधना के पीछे एक ओर आज़ादी के आंदोलन की प्रेरणा है तो दूसरी ओर भारतीय समाज में स्त्री जीवन की वास्तविक स्थिति का बोध भी है। हिंदी गद्य साहित्य में संस्मरण एवं रेखाचित्र को बुलंदियों तक पहुँचाने का श्रेय महादेवी वर्मा जी को है। उनके संस्मरणों और रेखाचित्रों में शोषित, पीड़ित लोगों के प्रति ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों के लिए भी आत्मीयता एवं अक्षय करुणा प्रकट हुई है। उनकी भाषा-शैली सरल एवं स्पष्ट है तथा शब्द चयन प्रभावपूर्ण और चित्रात्मक है।

प्रस्तावना प्रसंग

आ चल के तुझे
मैं ले के चलूँ
एक ऐसे गगन के तले।

जहाँ ग़म भी न हो
आँसू भी न हो
बस प्यार ही प्यार पले।

प्रश्न

1. कवि बच्चों को कैसे स्थान पर ले जाना चाहता है?
2. बच्चों को कैसा व्यवहार अच्छा लगता है?
3. बचपन के संस्कारों का हमारे व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?

भूमिका

मेरे बचपन के दिन में महादेवी वर्मा जी ने अपने बचपन के उन दिनों को स्मृति के सहारे लिखा है जब वे विद्यालय में पढ़ रही थीं। इस अंश में लड़कियों के प्रति सामाजिक रवैये, विद्यालय की सहपाठिनों, छात्रावास के जीवन और स्वतंत्रता आंदोलन के प्रसंगों का बहुत ही सजीव वर्णन है।

© SCERT not to be republished

बचपन की स्मृतियों में एक विचित्र-सा आकर्षण होता है। कभी-कभी लगता है, जैसे सपने में सब देखा होगा। परिस्थितियाँ बहुत बदल जाती हैं।

अपने परिवार में मैं कई पीढ़ियों के बाद उत्पन्न हुई। मेरे परिवार में प्रायः दो सौ वर्ष तक कोई लड़की थी ही नहीं। सुना है, उसके पहले लड़कियों को पैदा होते ही परमधाम भेज देते थे। फिर मेरे बाबा ने बहुत दुर्गा-पूजा की। हमारी कुल-देवी दुर्गा थीं। मैं उत्पन्न हुई तो मेरी बड़ी खातिर हुई और मुझे वह सब नहीं सहना पड़ा। जो अन्य लड़कियों को सहना पड़ता है। परिवार में बाबा फ़ारसी और उर्दू जानते थे। पिता ने अंग्रेज़ी पढ़ी थी। हिंदी का कोई वातावरण नहीं था।

मेरी माता जबलपुर से आईं तब वे अपने साथ हिंदी लाईं। वे पूजा-पाठ भी बहुत करती थीं। पहले-पहल उन्होंने मुझको 'पंचतंत्र' पढ़ना सिखाया।

बाबा कहते थे, इसको हम विदुषी बनाएँगे। मेरे संबंध में उनका विचार बहुत ऊँचा रहा। इसलिए 'पंचतंत्र' भी पढ़ा मैने, संस्कृत भी पढ़ी। ये अवश्य चाहते थे कि मैं उर्दू-फ़ारसी सीख लूँ, लेकिन वह मेरे वश की नहीं थी। मैंने जब एक दिन मौलवी साहब को देखा तो बस, दूसरे दिन मैं चारपाई के नीचे जा छिपी। तब पंडित जी आए संस्कृत पढ़ाने। माँ थोड़ी संस्कृत जानती थीं। गीता में उन्हें विशेष रुचि थी। पूजा-पाठ के समय मैं भी बैठ जाती थी और संस्कृत सुनती थी। उसके उपरांत उन्होंने मिशन स्कूल में रख दिया मुझको। मिशन स्कूल में वातावरण दूसरा था, प्रार्थना दूसरी थी। मेरा मन नहीं लगा। वहाँ जाना बंद कर दिया। जाने में रोने-धोने लगी। तब उन्होंने मुझको क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में भेजा, जहाँ मैं पाँचवें दर्जे में भर्ती हुई। यहाँ का वातावरण बहुत अच्छा था उस समय। हिंदू लड़कियाँ भी थीं, ईसाई लड़कियाँ भी थीं। हम लोगों का एक ही मेस था। उस मेस में प्याज तक नहीं बनता था।

वहाँ छात्रावास के हर एक कमरे में हम चार छात्राएँ रहती थीं। उनमें पहली ही साथिन सुभद्रा कुमारी मिलीं। सातवें दर्जे में वे मुझसे दो साल सीनियर थीं। वे कविता लिखती थीं और मैं भी बचपन से तुक मिलाती आई थी। बचपन में माँ लिखती थीं, पद भी गाती थीं। मीरा के पद विशेष रूप से गाती थीं। सवेरे 'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले' यही सुना जाता था। प्रभाती गाती थीं। शाम को मीरा का कोई पद गाती थीं। सुन-सुनकर मैंने भी ब्रजभाषा में लिखना आरंभ किया। यहाँ आकर देखा कि सुभद्रा कुमारी जी खड़ी बोली में लिखती थीं। मैं भी वैसा ही लिखने लगी। लेकिन सुभद्रा जी बड़ी थीं, प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। उनसे छिपा-छिपाकर लिखती थी मैं। एक दिन उन्होंने कहा, 'महादेवी, तुम कविता लिखती हो?' तो मैंने डर के मारे कहा, 'नहीं'। अंत में उन्होंने मेरी डेस्क की किताबों की तलाशी ली और बहुत-सा निकल पड़ा उसमें से। तब जैसे किसी अपराधी को पकड़ते हैं, ऐसे उन्होंने एक हाथ में कागज़ लिए और एक हाथ से मुझको पकड़ा और पूरे होस्टल में दिखा आईं कि ये कविता लिखती है। फिर हम दोनों की मित्रता हो गई। क्रास्थवेट में एक पेड़ की डाल नीची थी। उस डाल पर हम लोग बैठ जाते थे। जब और लड़कियाँ खेलती थीं तब हम लोग तुक मिलाते थे। उस समय एक पत्रिका निकलती थी- 'स्त्री दर्पण'- उसी में भेज देते थे। अपनी तुकबंदी छप जाती थी। फिर यहाँ कवि-सम्मेलन होने लगे तो हम लोग भी उनमें जाने लगे। हिंदी का उस समय प्रचार-प्रसार था। मैं सन् 1917 में यहाँ आई थी। उसके उपरांत गांधी जी का सत्याग्रह आरंभ हो गया और आनंद भवन स्वतंत्रता के

संघर्ष का केंद्र हो गया। जहाँ-तहाँ हिन्दी का भी प्रचार चलता था। कवि-सम्मेलन होते थे तो क्रास्थवेट से मैडम हमको साथ लेकर जाती थीं। हम कविता सुनाते थे। कभी हरिऔध जी अध्यक्ष होते थे, कभी श्रीधर पाठक होते थे, कभी रत्नाकर जी होते थे, कभी कोई होता था। कब हमारा नाम पुकारा जाए, बेचैनी से सुनते रहते थे। मुझको प्रायः प्रथम पुरस्कार मिलता था। सौ से कम पदक नहीं मिले होंगे उसमें।

एक बार की घटना याद आती है कि एक कविता पर मुझे चाँदी का एक कटोरा मिला। बड़ा नक्काशीदार, सुंदर। उस दिन सुभद्रा नहीं गई थीं। सुभद्रा प्रायः नहीं जाती थीं कवि-सम्मेलन में। मैंने उनसे आकर कहा, 'देखो, यह मिला।'

सुभद्रा ने कहा, 'ठीक है, अब तुम एक दिन खीर बनाओ और मुझको इस कटोरे में खिलाओ।' उसी बीच आनंद भवन में बापू आए। हम लोग तब अपने जेब खर्च में से एक-एक, दो-दो आने देश के लिए बचाते थे और जब बापू आते थे तो वह पैसा उन्हें दे देते थे। उस दिन जब बापू के पास मैं गई तो अपना कटोरा भी लेती गई। मैंने निकालकर बापू को दिखाया। मैंने कहा, 'कविता सुनाने पर मुझको यह कटोरा मिला है।' कहने लगे, 'अच्छा, दिखा तो मुझको।' मैंने कटोरा उनकी ओर बढ़ा दिया तो उसे हाथ में लेकर बोले, 'तू देती है इसे?' अब मैं क्या कहती? मैंने दे दिया और लौट आई। दुख यह हुआ कि कटोरा लेकर कहते, कविता क्या है? पर कविता सुनाने को उन्होंने नहीं कहा। लौटकर अब सुभद्रा जी से कहा कि कटोरा तो चला गया। सुभद्रा जी ने कहा, 'और जाओ दिखाने' फिर बोली, 'देखो भाई, खीर तो तुमको बनानी होगी। अब चाहे पीतल की कटोरी में खिलाओ, चाहे फूल के कटोरे में' -फिर भी मुझे मन ही मन प्रसन्नता हो रही थी कि पुरस्कार में मिला अपना कटोरा मैंने बापू को दे दिया।

सुभद्रा जी छात्रावास छोड़कर चली गईं। तब उनकी जगह एक मराठी लड़की ज़ेबुन्निसा हमारे कमरे में आकर रहीं। वह कोल्हापुर से आई थी। ज़ेबुन मेरा बहुत-सा काम कर देती थी। वह मेरी डेस्क साफ़ कर देती थी, किताबें ठीक से रख देती थी और इस तरह मुझे कविता के लिए कुछ और अवकाश मिल जाता था। ज़ेबुन मराठी शब्दों से मिली-जुली हिंदी बोलती थी। मैं भी उससे कुछ-कुछ मराठी सीखने लगी थी। वहाँ एक उस्तानी जी थीं- ज़ीनत बेगम। ज़ेबुन जब 'इकड़े-तिकड़े' या 'लोकर-लोकर' जैसे मराठी शब्दों को मिलाकर कुछ कहती तो उस्तानी जी से टोके बिना न रहा जाता था- 'वाह! देसी कौवा, मराठी

© SCERT not to be republished

बोली!' ज़ेबुन कहती थी, 'नहीं उस्तानी जी, यह मराठी कौआ मराठी बोलता है।' ज़ेबुन मराठी महिलाओं की तरह किनारीदार साड़ी और वैसा ही ब्लाउज़ पहनती थी। कहती थी, हम मराठी हूँ तो मराठी बोलेंगे!'

उस समय यह देखा मैंने कि सांप्रदायिकता नहीं थी। जो अवध की लड़कियाँ थीं वे आपस में अवधी बोलती थीं; बुंदेलखंड की आती थीं, वे बुंदेली में बोलती थीं। कोई अंतर नहीं आता था और हम पढ़ते हिंदी थे। उर्दू भी हमको पढ़ाई जाती थी, परंतु आपस में हम अपनी भाषा में ही बोलती थीं। यह बहुत बड़ी बात थी। हम एक मेस में खाते थे, एक प्रार्थना में खड़े होते थे; कोई विवाद नहीं होता था।

मैं जब विद्यापीठ आई तब तक मेरे बचपन का वही क्रम चला जो आज तक चलता आ रहा है। कभी-कभी बचपन के संस्कार ऐसे होते हैं कि हम बड़े हो जाते हैं, तब तक चलते हैं। बचपन का एक और भी संस्कार था कि हम जहाँ रहते थे वहाँ जवारा के नवाब रहते थे। उनकी नवाबी छिन गई थी। वे बेचारे एक बँगले में रहते थे। उसी कंपाउंड में हम लोग रहते थे। बेगम साहिबा कहती थीं- 'हमको ताई कहो! हम लोग उनको 'ताई साहिबा' कहते थे। उनके बच्चे हमारी माँ को चची जान कहते थे। हमारे जन्मदिन वहाँ मनाए जाते थे। उनके जन्मदिन हमारे यहाँ मनाए जाते थे। उनका एक लड़का था। उसको राखी बाँधने के लिए वे कहती थीं। बहनों को राखी बाँधनी चाहिए। राखी के दिन सवेरे से उसको पानी भी नहीं देती थीं। कहती थीं, राखी के दिन बहनें राखी बाँध जाएँ तब तक भाई को निराहार रहना चाहिए। बार-बार कहलाती थीं- 'भाई भूखा बैठा है, राखी बँधवाने के लिए।' फिर हम लोग जाते थे। हमको लहरिए या कुछ मिलते थे। इसी तरह मुहर्रम में हरे कपड़े उनके बनते थे तो हमारे भी बनते थे फिर एक हमारा छोटा भाई हुआ वहाँ, तो ताई साहिबा ने पिताजी से कहा, 'देवर साहब से कहो, वो मेरा नेग ठीक करके रखें। मैं शाम को आऊँगी।' वे कपड़े-वपड़े लेकर आईं। हमारी माँ को वह दुलहन कहती थीं। कहने लगीं, 'दुलहन, जिनके ताई-चाची नहीं होती हैं वो अपनी माँ के कपड़े पहनते हैं, नहीं तो छह महीने तक चाची-ताई पहनाती हैं। मैं इस बच्चे के लिए कपड़े लाई हूँ। यह बड़ा सुंदर है। मैं अपनी तरफ़ से इसका नाम 'मनमोहन' रखती हूँ।'

वही प्रोफ़ेसर मनमोहन वर्मा आगे चलकर जम्मू यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर रहे, गोरखपुर यूनिवर्सिटी के भी रहे। कहने का तात्पर्य यह कि मेरे छोटे भाई का नाम वही चला जो ताई साहिबा ने दिया। उनके यहाँ भी हिंदी चलती थी, उर्दू भी चलती थी। यों, अपने घर में वे अवधी बोलते थे। वातावरण ऐसा था उस समय कि हम लोग बहुत निकट थे। आज की स्थिति देखकर लगता है, जैसे वह सपना ही था। आज वो सपना खो गया।

शायद वह सपना सत्य हो जाता तो भारत की कथा कुछ और होती।

प्रश्न-अभ्यास

अर्थग्राह्यता-प्रतिक्रिया

❖ विचार-विमर्श

1. महादेवी वर्मा के बचपन के दिन लगभग सौ वर्ष पहले थे। आज के बच्चों के बचपन एवं महादेवी वर्मा के बचपन की परिस्थितियों की तुलना कीजिए।
2. महादेवी वर्मा के बचपन के दिनों में लड़कियों को पढ़ने की स्वतंत्रता अधिक न थी। इसके क्या कारण हो सकते हैं? चर्चा कीजिए।
3. आज समाज विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुका है, फिर भी लड़कियों की शिक्षा के प्रति उतनी सजगता नहीं है जितनी लड़कों की शिक्षा के प्रति। इसका क्या कारण है? इसके लिए क्या किया जाना चाहिए? चर्चा कीजिए।

❖ पढ़ना, भाव समझना और भाव विस्तार

क. पाठ में उत्तर ढूँढ़िए।

1. इनसे संबंधित पंक्तियाँ पाठ में ढूँढ़कर लिखिए।
   - लेखन की प्रेरणा
   - देश-सेवा की अभिलाषा
   - रक्षा बंधन का त्यौहार और धार्मिक सद्भाव
2. लेखिका उर्दू-फ़ारसी क्यों नहीं सीख पाईं?
3. लेखिका ने अपनी माँ के व्यक्तित्व की किन विशेषताओं का उल्लेख किया है?
4. मनमोहन कौन थे? उनका नाम किसने रखा था?

ख. पाठ समझकर उत्तर दीजिए।

1. जवारा के नवाब के साथ अपने पारिवारिक संबंधों को लेखिका ने आज के संदर्भ में स्वप्न जैसा क्यों कहा है?
2. "शायद वह सपना सत्य हो जाता तो भारत की स्थिति कुछ और होती।" आशय स्पष्ट कीजिए।
3. लेखिका ने छात्रावास के जिस बहुभाषी परिवेश की चर्चा की है उसे अपनी मातृभाषा में लिखिए।

ग. पढ़ने की योग्यता का विस्तार

प्रस्तुत गद्यांश पढ़कर दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

बात सन् 1945-46 की है, जब पाकिस्तान नहीं बना था। उन दिनों लाहौर के एक कॉलेज में गणित के प्रोफ़ेसर थे- अनिलेंद्र गंगोपाध्याय। बहुत सज्जन, कर्मठ और छात्रों के प्रिय। इन मास्टर साहब का भी एक प्रिय छात्र था, बहुत ही होनहार और मेधावी।

© SCERT not to be republished

पैंतीस साल का लंबा समय गुजरता चला गया। मास्टर साहब बटवारे के बाद कलकत्ता में आ बसे। इस लंबे दौर में वह मेधावी छात्र विज्ञान के क्षेत्र में नए आयाम खोलता हुआ, सम्मान-दर-सम्मान पाता हुआ सर्वोच्च सम्मान तक पहुँचा।

एक दिन वह छात्र अचानक अपने वयोवृद्ध और रुग्ण श्रद्धेय मास्टर साहब से मिलने आ गया। समय की दूरी को मिटाकर जब गुरु और शिष्य मिले, तो वह मिलन का दृश्य अद्भुत था।

शिष्य ने नोबेल पुरस्कार में मिले अपने स्वर्ण पदक को गुरु के चरणों में भेंटकर अपनी श्रद्धा अर्पित करते हुए कहा, "मास्टर साहब, आपने जो कुछ मुझे पढ़ाया था, वह इतना अधिक था कि उससे अधिक और कुछ मैंने नहीं पढ़ा। यह पदक आपके उसी ज्ञान की देन है, जो आपने मुझे दिया।"

वयोवृद्ध और रुग्ण मास्टर साहब ने भावविभोर होकर स्वर्णपदक को अपने हाथ में उठा लिया। वह उसे देर तक गौर से देखते रहे और फिर अपने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए उसे सौंप दिया। प्रो. अनिलेंद्र गंगोपाध्याय का यह मेधावी छात्र और कोई नहीं, बल्कि पाकिस्तान के सुप्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी प्रो. अब्दुल सलाम थे। प्रो. सलाम गत दिनों भारत की यात्रा पर आए थे।

1. भारत की यात्रा पर कौन आए थे?
2. इस घटना के बाद प्रो. अनिलेंद्र अपने शिष्य प्रो.सलाम के बारे में क्या सोचते होंगे?
3. इस घटना से हमें क्या सीख मिलती है?

अभिव्यक्ति-सृजनात्मकता

❖ स्वाभिव्यक्ति

क. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार-पाँच वाक्यों में लिखिए।

1. ज़ेबुन्निसा महादेवी वर्मा के लिए बहुत काम करती थी। उनके स्थान पर यदि आप होतीं/होते तो महादेवी से आपकी क्या अपेक्षा होती?
2. महादेवी वर्मा को काव्य प्रतियोगिता में चाँदी का कटोरा मिला था। अनुमान लगाइए कि आपको इस तरह का कोई पुरस्कार मिला हो और वह देशहित में या किसी आपदा निवारण के काम में देना पड़े तो आप कैसा अनुभव करेंगे/करेंगी?

ख. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर आठ-दस वाक्यों में लिखिए।

1. "मैं उत्पन्न हुई तो मेरी बड़ी खातिर हुई और मुझे वह सब नहीं सहना पड़ा जो अन्य लड़कियों को सहना पड़ता है। इस कथन के आलोक में आप यह अनुमान लगाएँ कि-
   - उस समय लड़कियों की दशा कैसी थी?
   - लड़कियों के जन्म के संबंध में आज कैसी परिस्थितियाँ हैं?

© SCERT not to be republished

सृजनात्मक कार्य

महादेवी जी के इस संस्मरण को पढ़ते हुए आपके मानस-पटल पर भी अपने बचपन की कोई स्मृति उभर कर आई होगी, उसे संस्मरण शैली में लिखिए।

प्रशंसा

बचपन के दिन अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। प्रत्येक बच्चा किसी न किसी को अपना आदर्श मानता है, कोई अपने माता-पिता को, कोई गुरु को, कोई किसी महापुरुष को तो कोई अपने संगी साथियों को ही। वह उनका अनुकरण भी करता है। बेहतर भविष्य के लिए बचपन में जागरूकता के महत्व पर प्रकाश डालिए।

भाषा की बात

1. पाठ से निम्नलिखित शब्दों के विलोम शब्द ढूँढ़कर लिखिए।
   विद्वान, अनंत, निरपराधी, दंड, शांति।
2. निम्नलिखित शब्दों से उपसर्ग/प्रत्यय अलग कीजिए और मूल शब्द बताइए-
   उदाः निराहारी = निर् + आहार + ई
   सांप्रदायिकता, अप्रसन्नता, अपनापन, किनारीदार, स्वतंत्रता
3. निम्नलिखित उपसर्ग/प्रत्यय की सहायता से दो-दो शब्द बनाइए।
   उपसर्ग - अन्, अ, सत्, स्व, दुर्
   प्रत्यय - दार, हार, वाला, अनीय
4. पाठ में आए सामासिक शब्द छाँटकर विग्रह कीजिए।
   पूजा-पाठ = पूजा और पाठ

परियोजना कार्य

"लड़कियों की संख्या कम होने पर भारतीय समाज का रूप कैसा होगा?" यह प्रश्न पाँच अलग-अलग व्यवसाय के लोगों से पूछिए और उनके उत्तर लिखिए।

© NCERT not to be republished

पढ़िए - आनंद लीजिए

अब्राहम लिंकन

तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, जिन्हें गुलामों का मुक्तिदाता भी कहा जाता है, जिन्होंने देश को विभाजित होने से बचाया, गरीब परिवार में जन्मे थे। लिंकन प्रारम्भ से ही मेहनती, सरल स्वभाव के और बुद्धिमान व्यक्ति थे। आजीविका चलाने और पढ़ाई के लिए उन्हें काफ़ी मुश्किलों का सामना भी करना पड़ा। उन्होंने कभी किसी काम को छोटा नहीं समझा। कहा जाता है कि अमरीका में कई महान नेता पैदा हुए किंतु दासों और कमज़ोर वर्गों के प्रति पिता समान व्यवहार करनेवाला लिंकन जैसा कोई नेता पैदा नहीं हुआ। राष्ट्रपति लिंकन ने यह पत्र अपने पुत्र के शिक्षक को लिखा था। यह पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

व्हाइट हाउस

प्रिय गुरुजी,

मैं अपने पुत्र को शिक्षा के लिए आपके हाथो सौंप रहा हूँ। आपसे मेरी अपेक्षा यह है कि इसे ऐसी शिक्षा दें जिससे यह सच्चा इंसान बन सके।

सभी व्यक्ति न्यायप्रिय नहीं होते, और न ही सब बोलते हैं। यह तो मेरा बच्चा कभी-न-कभी सीख ही लेगा। पर उसे यह अवश्य सिखाएँ कि अगर दुनिया में बदमाश लोग होते हैं, तो नेक इंसान भी होते हैं। अगर स्वार्थी राजनीतिज्ञ हैं, तो जनता के हित में काम करने वाले देशप्रेमी भी हैं। उसे यह भी सिखाएँ कि अगर दुश्मन होते हैं, तो दोस्त भी होते हैं। मुझे पता है कि इसमें समय लगेगा। परंतु हो सके तो उसे यह ज़रूर सिखाएँ कि मेहनत से कमाया एक पैसा भी, हराम में मिली नोटों की गड्डी से कहीं अधिक मूल्यवान होता है।

उसे हारना सिखाएँ और जीत में खुश होना भी सिखाएँ। हो सके तो उसे राग-द्वेष से दूर रखें और उसे अपनी मुसीबतों को हँसकर टालना सिखाएँ। वह जल्दी ही यह सब सीखे कि बदमाशों को आसानी से काबू में किया जा सकता है। अगर संभव हो तो उसे किताबों की मनमोहक दुनिया में अवश्य ले जाएँ, साथ-साथ उसे प्रकृति की सुंदरता, नीले आसमान में उड़ते आज़ाद पक्षी, सुनहरी धूप में गुनगुनाती मधुमक्खियाँ और पहाड़ के ढलानों पर खिलखिलाते जंगली फूलों की हँसी को भी निहारने दें। स्कूल में उसे सिखाएँ कि नकल करके पास होने से फेल होना बेहतर है।

चाहे सभी लोग उसे गलत कहें, परन्तु वह अपने विचारों में पक्का विश्वास रखे और उन पर अडिग रहे। वह भले लोगों से साथ नेक व्यवहार करे और बदमाशों को करारा सबक सिखाए।

जब सभी लोग भेड़ों की तरह एक ही रास्ते पर चल रहें हों, तो उसमें भीड़ से अलग होकर अपना रास्ता बनाने की हिम्मत हो। उसे सिखाएँ कि वह हरेक बात को धैर्यपूर्वक सुने, फिर उसे सत्य की कसौटी पर कसे और केवल अच्छाई को ही ग्रहण करे।

अगर हो सके तो उसे दुःख में भी हँसने की सीख दें।

उसे समझाएँ कि अगर रोना भी पड़े, तो उसमें कोई शर्म की बात नहीं है। वह आलोचकों को नज़रअंदाज करे और चाटुकारों से सावधान रहे। वह अपने शरीर की ताकत के बूते पर भरपूर कमाई करे, परंतु अपनी आत्मा और अपने ईमान को कभी न बेचे। उसमें शक्ति हो कि चिल्लाती भीड़ के सामने भी खड़ा होकर, अपने सत्य के लिए जूझता रहे। आप उसे हमेशा ऐसी सीख दें कि मानव जाति पर उसकी असीम श्रद्धा बनी रहे।

मैंने अपने पत्र में बहुत कुछ लिखा है। देखें, इसमें से क्या करना संभव है।

आपका शुभेच्छु

अब्राहम लिंकन

© SCERT not to be republished

उपवाचक

1 इस जल प्रलय में

2 रीढ़ की हड्डी

3 माटी वाली

4 किस तरह आखिरकार मैं हिंदी में आया

© SCERT not to be republished

1 इस जल प्रलय में

- फणीश्वरनाथ रेणु

मेरा गाँव ऐसे इलाके में है जहाँ हर साल पश्चिम, पूरब और दक्षिण की कोसी, पनार, महानंदा और गंगा की बाढ़ से पीड़ित प्राणियों के समूह आकर पनाह लेते हैं, सावन-भादों में ट्रेन की खिड़कियों से विशाल और सपाट परती पर गाय, बैल, भैस, बकरों के हज़ारों झुंड-मुंड देखकर ही लोग बाढ़ की विभीषिका का अंदाज़ा लगाते हैं।

परती क्षेत्र में जन्म लेने के कारण अपने गाँव के अधिकांश लोगों की तरह मैं भी तैरना नहीं जानता। किंतु दस वर्ष की उम्र से पिछले साल तक- ब्वॉय स्काउट, स्वयंसेवक, राजनीतिक कार्यकर्ता अथवा रिलीफ़वर्कर की हैसियत से बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों में काम करता रहा हूँ और लिखने की बात? हाईस्कूल में बाढ़ पर लेख लिखकर प्रथम पुरस्कार पाने से लेकर- धर्मयुग में 'कथा-दशक' के अंतर्गत बाढ़ की पुरानी कहानी को नए पाठ के साथ प्रस्तुत कर चुका हूँ। जय गंगा (1947), डायन कोसी (1948), हड्डियों का पुल (1948), आदि छुटपुट रिपोर्ताज के अलावा मेरे कई उपन्यासों में बाढ़ की विनाश-लीलाओं के अनेक चित्र अंकित हुए हैं। किंतु, गाँव में रहते हुऐ बाढ़ से घिरने, बहने, भंसने और भोगने का अनुभव कभी नहीं हुआ। वह तो पटना शहर में सन् 1967 में ही हुआ, जब अट्ठारह घंटे की अविराम वृष्टि के कारण पुनपुन का पानी राजेंद्रनगर, कंकड़बाग तथा अन्य निचले हिस्सों में घुस आया था। अर्थात बाढ़ को मैंने भोगा है, शहरी आदमी की हैसियत से। इसीलिए इस बार जब बाढ़ का पानी प्रवेश करने लगा, पटना का पश्चिमी इलाका छाती भर पानी में डूब गया तो हम घर में ईंधन, आलू, मोमबत्ती, दियासलाई, सिगरेट, पीने का पानी और कांपोज की गोलियाँ जमाकर बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे।

सुबह सुना, राजभवन और मुख्यमंत्री-निवास प्लावित हो गया है। दोपहर में सूचना मिली, गोलघर जल से घिर गया है! (यों, सूचना बाँग्ला में इस वाक्य से मिली थी- 'जानो! गोलघर डूबे गेछे!') और पाँच बजे जब कॉफ़ी हाउस जाने के लिए (तथा शहर का हाल मालूम करने) निकला तो रिक्शेवाले ने हँसकर कहा- ''अब कहाँ जाइएगा? काफ़ी हाउस में तो 'अबले' पानी आ गया होगा।''

''चलो, पानी कैसे घुस गया है, वही देखना है।'' कहकर हम रिक्शा पर बैठ गए। साथ में नई कविता के एक विशेषज्ञ-व्याख्याता-आचार्य-कवि मित्र थे, जो मेरी अनवरत-अनर्गल-अनगढ़ गद्यमय स्वगतोक्ति से कभी बोर नहीं होते (धन्य हैं!)।

मोटर, स्कूटर, ट्रैक्टर, मोटरसाइकिल, ट्रक, टमटम, साइकिल, रिक्शा पर और पैदल लोग पानी देखने जा रहे हैं, लोग पानी देखकर लौट रहे हैं। देखने वालों की आँखों में, ज़ुबान पर एक ही जिज्ञासा- ''पानी कहाँ तक आ गया है?'' देखकर लौटते हुए लोगों की बातचीत- ''फ्रेजर रोड पर आ गया! आ गया क्या, पार कर गया। श्रीकृष्णापुरी, पाटलिपुत्र कालोनी, बोरिंग रोड? इंडस्ट्रियल एरिया का कहीं पता नहीं...अब भट्टाचार्जी रोड पर पानी आ गया होगा। ....छाती भर पानी है। वीमेंस कॉलेज के पास 'डुबाव-पानी' है। ..आ रहा है! ...आ गया!! ...घुस गया ....डूब गया ....डूब गया ....वह गया!''

हम जब कॉफ़ी हाउस के पास पहुँचें, कॉफ़ी हाउस बंद कर दिया गया था। सड़क के एक किनारे एक मोटी डोरी की शक्ल में गेरुआ-झाग-फेन में उलझा पानी तेज़ी से सरकता आ रहा था। मैंने कहा- ''आचार्य जी, आगे जाने की ज़रूरत नहीं। वो देखिए- आ रहा है....मृत्यु का तरल दूत!''

आतंक के मारे दोनों हाथ बरबस जुड़ गए और सभय प्रणाम-निवेदन में मेरे मुँह से कुछ अस्फुट शब्द निकले (हाँ, मैं बहुत कायर और डरपोक हूँ!)।

रिक्शावाला बहादुर है कहता है- 'चलिए न, थोड़ा और आगे!'

भीड़ का एक आदमी बोला- ''ए रिक्शा, करेंट बहुत तेज़ है। आगे मत जाओ।''

मैंने रिक्शा वाले से अनुनय भरे स्वर में कहा- ''लौटा ले भैया। आगे बढ़ने की ज़रूरत नहीं।''

रिक्शा मोड़कर हम 'अप्सरा' सिनेमा हॉल (सिनेमा-शो बंद!) के बगल से गांधी मैदान की ओर चले। पैलेस होटल और इंडियन एयरलाइंस दफ़्तर के सामने पानी भर रहा था। पानी की तेज़ धारा पर लाल-हरे 'नियन' विज्ञापनों की परछाइयाँ सैकड़ों रंगीन साँपों की सृष्टि कर रही थीं। गांधी मैदान की रैलिंग के सहारे हज़ारों लोग खड़े देख रहे थे। दशहरा के दिन रामलीला के 'राम' के रथ की प्रतीक्षा में जितने लोग रहते हैं, उससे कम नहीं थे... गांधी मैदान के आनंद-उत्सव, सभा सम्मेलन और खेलकूद की सारी स्मृतियों पर धीरे-धीरे एक गैरिक आवरण आच्छादित हो रहा था। हरियाली पर शनैः शनैः पानी फिरते देखने का अनुभव सर्वथा नया था। इसी बीच एक अधेड़, मुस्टंड और गँवार ज़ोर-ज़ोर से बोल उठा- ''ईह! जब दानापुर डूब रहा था तो पटनियाँ बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए...अब बूझो!''

© SCERT not to be republished

मैंने अपने आचार्य-कवि मित्र से कहा- ''पहचान लीजिए। यही है वह 'आम आदमी', जिसकी खोज हर साहित्यिक गोष्ठियों में होती रहती है। उसके वक्तव्य में 'दानापुर' के बदले 'उत्तर बिहार' अथवा कोई भी बाढ़ग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र जोड़ दीजिए .....''

शाम के साढ़े सात बज चुके और आकाशवाणी के पटना केंद्र से स्थानीय समाचार प्रसारित हो रहा था। पान की दुकानों के सामने खड़े लोग, चुपचाप, उत्कर्ण होकर सुन रहे थे .....।

''...पानी हमारी स्टूडियों की सीढ़ियों तक पहुँच चुका है और किसी भी क्षण स्टूडियो में प्रवेश कर सकता है।''

समाचार दिल दहलाने वाला था। कलेजा धड़क उठा। मित्र के चेहरे पर भी आतंक की कई रेखाएँ उभरीं। किंतु हम तुरंत ही सहज हो गए; यानी चेहरे पर चेष्टा करके सहजता ले आए, क्योंकि हमारे चारों ओर कहीं कोई परेशान नज़र नहीं आ रहा था। पानी देखकर लौटते हुए लोग आम दिनों की तरह हँस-बोल रहे थे, बल्कि आज तनिक उत्साहित थे। हाँ, दुकानों में थोड़ी हड़बड़ी थी। नीचे के सामान ऊपर किए जा रहे थे। रिक्शा, टमटम, ट्रक और टेम्पो पर सामान लादे जा रहे थे। खरीद-बिक्री बंद हो चुकी थी। पानवालों की बिक्री अचानक बढ़ गई थी। आसन्न संकट से कोई प्राणी आतंकित नहीं दिख रहा था।

....पानवाले के आदमकद आईने में उतने लोगों के बीच हमारी ही सूरतें 'मुहर्रमी' नज़र आ रही थीं। मुझे लगा, अब हम यहाँ थोड़ी देर भी ठहरेंगे तो वहाँ खड़े लोग किसी भी क्षण ठठाकर हम पर हँस सकते थे- ''ज़रा इन बुज़दिलों का हुलिया देखो!'' क्योंकि वहाँ ऐसी ही बातें चारों ओर से उछाली जा रही थीं- ''एक बार डूब ही जाए! ...धनुष्कोटि की तरह पटना लापता न हो जाए कहीं!... सब पाप धुल जाएगा....चलो, गोलघर के मुँडे पर ताश की गड्डी लेकर बैठ जाएँ....बिस्कोमान बिल्डिंग की छत पर क्यों नहीं?...भई, यही माकूल मौका है। इनकम टैक्सवालों को ऐन इसी मौके पर काले कारबारियों के घर पर छापा मारना चाहिए। आसामी बा-माल...''

राजेंद्रनगर चौराहे पर 'मैगज़ीन कॉर्नर' की आखिरी सीढ़ियों पर पत्र-पत्रिकाएँ पूर्ववत् बिछी हुई थीं। सोचा, एक सप्ताह की खुराक एक ही साथ ले लूँ। क्या-क्या ले लूँ?... हेडली चेज़, या एक ही सप्ताह में फ्रेंच/जर्मन सिखा देने वाली किताबें अथवा 'योग' सिखाने वाली कोई सचित्र किताब? मुझे इस तरह किताबों को उलटते-पलटते देखकर दुकान का नौजवान मालिक कृष्णा पता नहीं क्यों मुसकराने लगा। किताबों को छोड़ कई हिंदी-बाँग्ला और अंग्रेज़ी सिने पत्रिकाएँ लेकर लौटा। मित्र से विदा होते हुए कहा- ''पता नहीं, कल हम कितने पानी मे रहें। ....बहरहाल, जो कम पानी में रहेगा। वह ज़्यादा पानी में फँसे मित्र की सुधि लेगा।''

फ़्लैट में पहुँचा ही था कि 'जनसंपर्क' की गाड़ी भी लाउडस्पीकर से घोषणा करती हुई राजेंद्रनगर पहुँची चुकी थी। हमारे 'गोलंबर' के पास कोई भी आवाज़, चारों बड़े ब्लॉकों की इमारतों से टकराकर

मँडराती हुई, बार-बार प्रतिध्वनित होती है। सिनेमा अथवा लॉटरी की प्रचारगाड़ी यहाँ पहुँचते ही- 'भाइयो' पुकारकर एक क्षण के लिए चुप हो जाती है। पुकार मँडराती हुई प्रतिध्वनित होती है-भाइयो... भाइयो.. भाइयो...! एक अलमस्त जवान रिक्शाचालक है जो अकसर रात के सन्नाटे में सवारी पहुँचाकर लौटते समय इस गोलंबर के पास अलाप उठता है- 'सुन मेरे बंधु रे-ए-न...सुन मोरे मितवा-वा-वा-य...'

गोलंबर के पास जनसंपर्क की गाड़ी से ऐलान किया जाने लगा- ''भाइयो.! ऐसी संभावना है... कि बाढ़ का पानी...रात्रि के करीब बारह बजे तक...लोहानीपुर, कंकड़बाग और राजेंद्रनगर में घुस जाए। अतः आप लोग सावधान हो जाएँ।''

(प्रतिध्वनि-सावधान हो जाएँ! सावधान हो जाएँ!)

मैंने गृहस्वामिनी से पूछा- ''गैस का क्या हाल है?''

''बस, उसी का डर है। अब खत्म होने वाला है। असल में सिलिंडर में 'मीटर-उटर' की तरह कोई चीज़ नहीं होने से कुछ पता नहीं चलता। लेकिन, अंदाज़ है कि एक या दो दिन...कोयला है। स्टोव है। मगर किरासन एक ही बोतल....''

''फिलहाल, बहुत है....बाढ़ का भी यही हाल है। मीटर-उटर की तरह कोई चीज़ नहीं होने से पता नहीं चलता कि कब आ धमके।''-मैंने कहा।

सारे राजेंद्रनगर में 'सावधान-सावधान' ध्वनि कुछ देर गूँजती रही। ब्लॉक के नीचे की दुकानों से सामान हटाए जाने लगे। मेरे फ़्लैट के नीचे के दुकानदार ने, पता नही क्यों, इतना कागज़ इकट्ठा कर रखा था। एक अलाव लगाकर सुलगा दिया। हमारा कमरा धुएँ से भर गया।

सारा शहर जगा हुआ है। पश्चिम की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा करता हूँ...हाँ पीरमुहानी या सालिमपुरा-अहरा अथवा जनक किशोर-नवलकिशोर रोड की ओर से कुछ हलचल की आवाज़ आ रही है। लगता है, एक-डेढ़ बजे रात तक पानी राजेंद्रनगर पहुँचेगा।

सोने की कोशिश करता हूँ। लेकिन नींद आएगी भी? नहीं, कांपोज की टिकिया अभी नहीं। कुछ लिखूँ? किंतु क्या लिखूँ...कविता? शीर्षक-बाढ़ आकुल प्रतीक्षा?

नींद नहीं, स्मृतियाँ आने लगीं-एक-एक कर। चलचित्र के बेतरतीब दृश्यों की तरह!

1947.....मनिहारी (तब पूर्णिया, अब कटिहार ज़िला) के इलाके में गुरुजी (स्व. सतीनाथ भादुड़ी) से साथ गंगा मैया की बाढ़ से पीड़ित क्षेत्र में हम नाव पर जा रहे हैं। चारों ओर पानी ही पानी। दूर, एक 'द्वीप' जैसा बालूचर दिखाई पड़ा। हमने कहा, वहाँ चलकर ज़रा चहलकदमी करके टाँगें सीधी कर लें। भादुड़ी जी कहते हैं- ''किंतु, सावधान! ऐसी जगहों पर कदम रखने के पहले यह मत भूलना कि तुमसे पहले ही वहाँ हर तरह के प्राणी शरणार्थी के रूप में मौजूद मिलेंगे'' और सचमुच-चींटी-चींटे से लेकर साँप-बिच्छू और लोमड़ी-सियार तक यहाँ पनाह ले रहे थे..भादुड़ी जी की हिदायत थी- हर नाव पर

© SCERT not to be republished

'पकाही घाव' (पानी में पैर की उँगलियाँ सड़ जाती हैं। तलवों में भी घाव हो जाता है) की दवा, दियासलाई की डिबिया और किरासन तेल रहना चाहिए और, सचमुच हम जहाँ जाते, खाने-पीने की चीज़ से पहले 'पकाही घाव' की दवा और दियासलाई की माँग होती...

1949 ....उस बार महानंदा की बाढ़ से घिरे बापसी थाना के एक गाँव में हम पहुँचे। हमारी नाव पर रिलीफ़ के डाक्टर साहब थे। गाँव के कई बीमारों को नाव पर चढ़ाकर कैंप में ले जाना था। एक बीमार नौजवान के साथ उसका कुत्ता भी 'कुंई-कुंई' करता हुआ नाव पर चढ़ आया। डाक्टर साहब कुत्ते को देखकर 'भीषण भयभीत' हो गए और चिल्लाने लगे- ''आ रे! कुकुर नहीं, कुकुर नहीं...कुकुर को भगाओ!'' बीमार नौजवान छप-से पानी में उतर गया- ''हमार कुकुर नहीं जाएगा तो हम हुँ नहीं जाएगा।'' फिर कुत्ता भी छपाकपानी में गिरा- ''हमार आदमी नहीं जाएगा तो हम हुँ नहीं जाएगा''....परमान नदी की बाढ़ में डूबे हुए एक 'मुसहरी' (मुसहरों की बस्ती) में हम राहत बाँटने गए। खबर मिली थी वे कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसाकर खा रहे हैं। किसी तरह जी रहें हैं। किंतु टोले के पास जब हम पहुँचे तो ढोलक और मंजीरा की आवाज़ सुनाई पड़ी। जाकर देखा, एक ऊँची जगह 'मचान' बनाकर स्टेज की तरह बनाया गया है। 'बलवाही' नाच हो रहा था। लाल साड़ी पहनकर काला-कलूटा 'नटुआ' दुलहिन का हाव-भाव दिखला रहा था; यानी, वह 'धानी' है। 'घरनी' (धानी) घर छोड़कर मायके भागी जा रही है और उसका घरवाला (पुरुष) उसको मनाकर राह से लौटाने गया है। इस पद के साथ ही ढोलक पर द्रुत ताल बजने लगा -'धागिड़गिड़-धागिड़गिड़-चकैके चकधुम चकैके चकधुम-चकधुम चकधुम!' कीचड़ पानी में लथपथ भूखे-प्यासे-नर-नारियों के झुंड में मुक्त खिलखिलाहट लहरें लेने लगती है। हम रिलीफ़ बाँटकर भी ऐसी हँसी उन्हें दे सकेंगे क्या! (शास्त्री जी, आप कहाँ है?) बलवाही नाच की बात उठते ही मुझे अपने परम मित्र भोला शास्त्री की याद हमेशा क्यों आ जाती है? यह एक बार, 1937 में, सिमरवनी-शंकरपुर में बाढ़ के समय 'नाव' को लेकर लड़ाई हो गई थी। मैं उस समय 'बालचर' (ब्वाय स्काउट) था। गाँव के लोग नाव के अभाव में केले के पौधे का 'भेला' बनाकर किसी तरह काम चला रहे थे और वहीं जमींदार के लड़के नाव पर हरमोनियम-तबला के साथ झिंझिर (जल-विहार) करने निकले थे। गाँव के नौजवानों ने मिलकर उनकी नाव छीन ली थी। थोड़ी मारपीट भी हुई थी...।

और 1967 में जब पुनपुन का पानी राजेंद्रनगर में घुस आया था, एक नाव पर कुछ सजे-धजे युवक और युवतियों की टोली किसी फ़िल्म में देखे हुए कश्मीर का आनंद घर-बैठे लेने के लिए निकली थीं। नाव पर स्टोव जल रहा था- केतली चढ़ी हुई थी, बिस्कुट के डिब्बे खुले हुए थे, एक लड़की प्याली में चम्मच डालकर एक अनोखी अदा से नेस्कैफे के पाउडर को मथ रही थी- 'एस्प्रेसो' बना रही थी, शायद। दूसरी लड़की बहुत मनोयोग से कोई सचित्र और रंगीन पत्रिका पढ़ रही थी। एक युवक दोनों पाँवों को फैलाकर बाँस की लग्गी से नाव खे रहा था। दूसरा युवक पत्रिका पढ़ने वाली लड़की के सामने, अपने घुटने पर कोहनी टेककर कोई मनमोहक 'डायलॉग' बोल रहा था। पूरे 'वाल्यूम' में बजते हुए 'ट्रांजिस्टर'

पर गाना आ रहा था- 'हवा में उड़ता जाए, मोरा लाल दुपट्टा मलमल का, हो जी हो जी!' हमारे ब्लॉक के पास गोलंबर में नाव पहुँची थी कि अचानक चारों ब्लॉक की छतों पर खड़े लड़कों ने एक साथ किलकारियों, सीटियों, फब्तियों की वर्षा कर दी और इस गोलंबर में किसी भी आवाज़ की प्रतिध्वनि मँडरा-मँडराकर गूँजती है। सो सब मिलाकर स्वयं ही जो ध्वनि संयोजन हुआ, उसे बडे-से-बड़े गुणी संगीत निर्देशक बहुत कोशिश के बावजूद नहीं कर पाते। उन फूहड़ युवकों की सारी 'एक्ज़बिशनिज़्म' तुरंत छुमंतर हो गई और युवतियों के रंगे लाल-लाल ओंठ और गाल काले पड़ गए। नाव पर अकेला ट्रांजिस्टर था जो पूरे दम के साथ मुखर था- 'नैया तोरी मंझधार, होश्यार होश्यार'!

''काहो रामसिंगार, पनियां आ रहलो है?''

''ऊँहूँ, न आ रहलौ है।''

ढाई बज गए, मगर पानी अब तक आया नहीं, लगता है कहीं अटक गया, अथवा जहाँ तक आना था आकर रुक गया, अथवा तटबंध पर लड़ते हुए इंजीनियरों की जीत हो गई शायद, या कोई दैवी चमत्कार हो गया! नहीं तो पानी कहीं भी जाएगा तो किधर से? रास्ता तो इधर से ही है...चारों ब्लॉकों के प्रायः सभी फ़्लैटों की रोशनी जल रही है, बुझ रही है। सभी जगे हुए हैं। कुत्ते रह-रहकर सामूहिक रुदन करते हैं और उन्हें रामसिंगार की मंडली डाँटकर चुप करा देती है। चौप...चौप..!

मुझे अचानक अपने उन मित्रों और स्वजनों की याद आई जो कल से ही पाटलीपुत्र कॉलोनी, श्रीकृष्णपुरी, बोरिंग रोड के अथाह जल में घिरे हैं...जितेंद्र जी, विनीता जी, बाबू भैया, इंदिरा जी, पता नहीं कैसे हैं- किस हाल में हैं वे! शाम को एक बार पड़ोस में जाकर टेलीफ़ोन करने के लिए चोंगा उठाया- बहुत देर तक कई नंबर डायल करता रहा। उधर सन्नाटा था एकदम। कोई शब्द नहीं- 'टुंग फुंग' कुछ भी नहीं।

बिस्तर पर करवट लेते हुए फिर एक बार मन में हुआ, कुछ लिखना चाहिए। लेकिन क्या लिखना चाहिए? कुछ भी लिखना संभव नहीं और क्या ज़रूरी है कि कुछ लिखा ही जाए? नहीं। फिर स्मृतियों को जगाऊँ तो अच्छा....पिछले साल अगस्त में नरपतगंज थाना चकरदाहा गाँव के पास छातीभर पानी में खड़ी एक आसन्नप्रसवा हमारी ओर गाय की तरह टुकुर-टुकुर देख रही थी....

नहीं, अब भूली-बिसरी याद नहीं, बेहतर है, आँखें मूँदकर सफ़ेद भेड़ों के झुंड देखने की चेष्टा करूँ...उजले-उजले सफ़ेद भेड़...सफ़ेद भेड़ों के झुंड। झुंड..किंतु सभी उजले भेड़ अचानक काले हो गए। बार-बार आँखें खोलता हूँ, मूँदता हूँ। काले को उजला करना चाहता हूँ। भेड़ों के झुंड भूरे हो जाते हैं। उजले भेड़...उजले भेड़..काले भूरे...किंतु उजले...उजले...गेहुएँ रंग के भेड़...।

'ओई द्याखो- एसे गेछे जल'! -झकझोरकर मुझे जगाया गया। घड़ी देखी, ठीक साढ़े पाँच बज रहे थे। सवेरा हो चुका था...आ रहलौ है! आ रहलौ है पनियां! पानी आ गेलौ। हो रामसिंगार! हो मोहन! रामचन्नर-अरे हो...

आँखें मलता हुआ उठा। पश्चिम की ओर, थाना से सामने सड़क पर मोटी डोली की शक्ल में- मुँह में झाग-फेन लिए -पानी आ रहा है ठीक वैसा ही जैसा शाम को कॉफ़ी हाउस के पास देखा था। पानी के साथ-साथ चलता हुआ, किलोल करता हुआ बच्चों का एक दल.... उधर पश्चिम-दक्षिण कोने पर दिनकर अतिथिशाला से और आगे भंगी बस्ती के पास बच्चे कूद क्यों रहे हैं? नहीं, बच्चे नहीं, पानी है। वहाँ मोड़ है, थोड़ा अवरोध है- इसलिए पानी उछल रहा है ....पश्चिम -उत्तर की ओर, ब्लॉक नंबर एक के पास पुलिस चौकी के पिछवाड़े में पानी का पहला रेला आया...ब्लॉक नंबर चार के नीचे सेठ की दुकान की बाएँ बाजू में लहरें नाचने लगीं।

अब मैं दौड़कर छत पर चला गया। चारों ओर शोर-कोलाहल-कलरव-चीख-पुकार और पानी का कलकल रव। लहरों का नर्तन। सामने फुटपाथ को पार कर अब पानी हमारे पिछवाड़े में सशक्त बहने लगा है। गोलबंर के गोल पार्क के चारों ओर पानी नाच रहा है...आ गया, आ गया! पानी बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है, चढ़ रहा है, करेंट कितना तेज़ है? सोन का पानी है। नहीं, गंगा जी का है। आ गैलो...

सामने की दीवार की ईंटें जल्दी-जल्दी डूबती जा रही हैं। बिजली के खंभे का काला हिस्सा डूब गया। ताड़ के पेड़ का तना क्रमशः डूबता जा रहा है....डूब रहा है।

....अभी यदि मेरे पास मूवी कैमरा होता, अगर एक टेप-रिकार्डर होता! बाढ़ तो बचपन से देखता आया हूँ, किंतु पानी का इस तरह आना कभी नहीं देखा। अच्छा हुआ जो रात में नहीं आया। नहीं तो भय के मारे न जाने मेरा क्या हाल होता..देखते ही देखते गोल पार्क डूब गया। हरियाली लोप हो गई। अब हमारे चारों ओर पानी नाच रहा था..भूरे रंग के भेड़ों के झुंड। भेड़ दौड़ रहे हैं -भूरे भेड़, वह चायवाले की झोंपड़ी गई, चली गई। काश, मेरे पास एक मूवी कैमरा होता, एक टेप-रिकार्डर होता? अच्छा है, कुछ भी नहीं। कलम थी, वह भी चोरी चली गई। अच्छा है, कुछ भी नहीं-मेरे पास।

प्रश्न-

1. बाढ़ की खबर सुनकर लोग किस तरह की तैयारी करने लगे?
2. बाढ़ की सही जानकारी लेने और बाढ़ का रूप देखने के लिए लेखक क्यों उत्सुक था?
3. मृत्यु का तरल दूत' किसे कहा गया है और क्यों?
4. आपदाओं से निपटने के लिए अपनी तरफ़ से कुछ सुझाव दीजिए।
5. 'ईह! जब दानापूर डूब रहा था तो पटनियाँ बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए...अब बूझो!'- इस कथन द्वारा लोगों की किस मानसिकता पर चोट की गई है?

© SCERT not to be republished

2 रीढ़ की हड्डी

-जगदीशचंद्र माथुर

मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अंदर के दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है वे अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।

बाबू : अबे धीरे-धीरे चल...अब तख्त को उधर मोड़ दे...उधर..बस, बस!

नौकर : बिछा दूँ साहब?

बाबू : (जरा तेज़ आवाज़ में) और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या?...बिछा दूँ साब! ...और यह पसीना किसलिए बहाया है?

नौकर : (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू : हँसता क्यों है?...अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं, कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज़ है?...उसे सीधा कर...यों...हाँ बस। ...और सुन, बहू जी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए। चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही। (नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच में मेज़पोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती हैं। गंदुमी रंग, छोटा कद, चेहरे और आवाज़ से ज़ाहिर होता है किसी काम में बहुत व्यस्त हैं। उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है- खाली हाथ। बाबू साहब (रामस्परूप) दोनों तरफ़ देखने लगते हैं...)

प्रेमा : मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गई एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में...!

रामस्वरूप : धोती?

प्रेमा : हाँ, अभी तो बदलकर आए हो, और फिर न जाने किसलिए ...

रामस्वरूप : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या? मैंने कहा था- धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला...अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ। उल्लू कहीं का।

प्रेमा : अच्छा, जा पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रखे हैं! न उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला।

रतन : और दरी?

प्रेमा : दरी यहीं तो रक्खी है, कोने में। वह पड़ी तो है।

रामस्वरूप : (दरी उठाते हुए) और बीबी जी के कमरे में से हरिमोनियम उठा ला, और सितार भी।...जल्दी जा।

(रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं।)

© NCERT not to be republished

प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाए पड़ी है।

रामस्वरूप : मुँह फुलाए! और तुम उसकी माँ, किस मर्ज़ की दवा हो? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आए हैं। अब तुम्हारी बेवकूफ़ी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना।

प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ? सारे जतन करके तो हार गई। तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रखा है। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं। अपना ज़माना अच्छा था। 'आ ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली। सच पूछो तो 'स्त्री-सुबोधिनी' में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं- ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी.ए., एम.ए. की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं...

रामस्वरूप : ग्रामोफ़ोन बाजा होता है न?

प्रेमा : क्यों?

रामस्वरूप : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चलाकर जब चाहे तब रोक लो। और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेम : हटो भी। तुम्हें ठठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में।

रामस्वरूप : तो हुआ क्या?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि ज़रा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुंदर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था। पर उसे तो इन चीज़ों से न जाने किस जन्म की नफ़रत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गई। भई, मैं बाज़ आई तुम्हारी इस लड़की से!

रामस्वरूप : न जाने कैसा इसका दिमाग है! वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है।

प्रेमा : अरे मैंने तो पहले ही कहा था। इंट्रेंस ही पास करा देते- लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती। पर तुम तो...

रामस्वरूप : (बात काटकर) चुप चुप..(दरवाज़े में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी ज़बान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन सब लोगों से सामने ज़िक्र और ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी!

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्ज़ी हो, करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

रामस्वरूप : तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लाकर भेज देना उसे। और, नाश्ता तो तैयार है न? (रतन का आना) आ गया रतन?... इधर ला, इधर! बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल।... पकड़ तो ज़रा उधर से। (चद्दर बिछाते हैं)

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज़्यादा खाएँगे नहीं। कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं। फल रखे हैं ही। चाय तैयार है, और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन? मक्खन तो आया ही नहीं।

© SCERT not to be republished

रामस्वरूप : क्या कहा? मक्खन नहीं आया? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है। जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाए कि यहाँ का काम करे। दफ़्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए, सो नखरों के मारे...

प्रेमा : यहाँ काम कौन ज़्यादा है? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज़ खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आएगा..दो आदमी ही तो हैं।

रामस्वरूप : हाँ एक तो बाबू गोपाल प्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि ज़रा करीने से आए। ये लोग ज़रा ऐसे ही है..गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालों पर। खूद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज़्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा : और लड़का?

रामस्वरूप : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी.एस.सी. के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है, मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी...

रतन : (जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबू जी, बाबू जी!

रामस्वरूप : क्या है?

रतन : कोई आते हैं।

रामस्वरूप : (दरवाज़े से बाहर झाँककर जल्दी मुँह अंदर करते हुए) अरे ए प्रेमा, वे आ भी गए। (नौकर पर नज़र पड़ते ही) अरे, तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ़। गया नहीं मक्खन लाने?... सब चौपट कर दिया। अबे उधर से नहीं, अंदर के दरवाज़े से जा (नौकर अंदर आता है)...और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी। (प्रेमा जल्दी से अंदर की तरफ़ आती है। उसकी धोती ज़मीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है।)

प्रेमा : उँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कम्बख्त।

रामस्वरूप : तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ...जल्दी।

(प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।)

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। आइए, आइए...हँ-हँ-हँ।

(बाबू गोपाल प्रसाद और उसके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक चतुराई टपकती है। आवाज़ से मालूम होता है कि काफ़ी अनुभवी और फितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है। आवाज़ पतली है और खिसियाहट भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

© SCERT not to be republished

रामस्वरूप : (अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ इधर तशरीफ़ लाइए इधर। (बाबू गोपाल प्रसाद बैठते हैं मगर बेंत गिर पड़ता है।)

रामस्वरूप : यह बेंत..! लाइए मुझे दीजिए। (कोने में रथ देते हैं। सब बैठते हैं।)
हँ-हँ-हँ। मकान ढूँढ़ने में तकलीफ़ तो नही हुई?

गो. प्रसाद : (खँखार कर) नहीं। ताँगे वाला जानता था। ..और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं?

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ़ तो दी..

गो. प्रसाद : अरे नहीं साहब! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके- हँ-हँ-सेवक ही हैं-हँ-हँ। (थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिनों की छुट्टियाँ हैं?

शंकर : जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक-एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप : आपके कोर्स खत्म होने में तो अब सालभर रहा होगा?

शंकर : जी, यही कोई साल दो साल।

रामस्वरूप : साल दो साल?

शंकर : हँ-हँ-हँ!...जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ ...

गो. प्रसाद : बात यह है कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगों की इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख!

रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गो. प्रसाद : जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी। और अकेले दो आने की हज़म करने की ताकत थी, अकेले! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में। तब न कोई वॉली-बॉल जानता था, न टेनिस न बैडमिंटन। बस कभी हॉकी या क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाए कि यह लड़का कमज़ोर है।
(शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं।)

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ, उस ज़माने की बात ही दूसरी थी..हँ-हँ!

गो.प्रसाद : (जोशीली आवाज़ में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घंटे! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अंग्रेज़ी लिखता था, फ़र्राटे की, कि आजकल के एम. ए. भी मुकाबिला नहीं कर सकते।

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही ।

© SCERT not to be republished

गो. प्रसाद : माफ़ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है।

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ!..जी हाँ वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना। हँ-हँ-हँ! (शंकर भी हीं-हीं करता है।)

गो. प्रसाद : (एक साथ अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब,'बिज़नेस' की बातचीत हो जाए।

रामस्वरूप : (चौंककर) बिज़नेस? बिज..(समझकर) ओह...अच्छा,अच्छा। लेकिन ज़रा नाश्ता तो कर लीजिए।

गो.प्रसाद : यह सब आप क्या तकल्लुफ़ करते हैं!

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! तकल्लुफ़ किस बात का? हँ-हँ! यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ़ लाए। वरना मैं किस काबिल हूँ। हँ-हँ!...माफ़ कीजिएगा ज़रा। अभी हाज़िर हुआ। (अंदर जाते हैं)

गो. प्रसाद : (थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में) आदमी तो भला है। मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर : जी...

(कुछ खँखारकर इधर-उधर देखता है।)

गो. प्रसाद : क्यों, क्या हुआ?

शंकर : कुछ नहीं।

गो. प्रसाद : झुककर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आए हो, कमर सीधी करके बैठो।
तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'बैकबोन'...
(इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय का ट्रे लिए हुए। मेज़ पर रख देते हैं)

गो. प्रसाद : आखिर आप माने नहीं।

रामस्वरूप : (चाय प्याले में डालते हुए) हँ-हँ-हँ! आपको विलायती चाय पसंद है या हिंदुस्तानी ?

गो. प्रसाद : नहीं-नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए। और ज़रा चीनी ज़्यादा डालिएगा। मुझे तो भई यह नया फ़ैशन पसंद नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफ़ी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाए तो ज़ायका क्या रहेगा?

रामस्वरूप : हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं। (प्याला पकड़ाते हैं।)

शंकर : (खँखारकर) सुना है सरकार अब ज़्यादा चीनी लेने वालों पर 'टैक्स' लगाएगी।

गो. प्रसाद : (चाय पीते हुए) हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

रामस्वरूप : (शंकर को प्याला पकड़ाते हुए) वह क्या?

गो. प्रसाद : खूबसूरती पर टैक्स! (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं) मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाए कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैंडर्ड' के माफ़िक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

© NCERT not to be republished

रामस्वरूप : (ज़ोर से हँसते हुए) वाह-वाह! खूब सोचा आपने! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के ज़माने में तो यह कभी उठता भी न था। (तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ़ बढ़ाते हैं) लीजिए!

गो. प्रसाद : (समोसे उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

रामस्वरूप : (शंकर की तरफ़ मुखातिब होकर) आपका क्या खयाल है शंकर बाबू?

शंकर : किस मामले में?

रामस्वरूप : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गो. प्रसाद : (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत ज़रूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाए, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम आप मान भी जाएँ, मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है?

रामस्वरूप : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गो. प्रसाद : देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

रामस्वरूप : हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ!

गो. प्रसाद : और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

रामस्वरूप : जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, खुद-ब-खुद मिला समझिए।

गो. प्रसाद : यह ठीक कहा आपने, बिलकुल ठीक (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो गलत है न?

रामस्वरूप : (चौंककर) क्या ?

गो.प्रसाद : यह पढ़ाई-लिखाई के बारे में!...जी हाँ, साफ़ बात है साहब, हमें ज़्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए...क्यों शंकर?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।

रामस्वरूप : नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

गो.प्रसाद : और क्या साहब! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं, कि जब आपने अपने लड़कों को बी.ए., एम.ए. तक पढ़ाया है, तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुअट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेज़ी अखबार पढ़ने लगीं और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।

रामस्वरूप : जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं।...हँ...हँ...हँ।

(शंकर भी हँसता है, मगर गोपाल प्रसाद गंभीर हो जाते हैं)

© SCERT not to be republished

गो. प्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ़ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी चीज़ों में से एक है।

रामस्वरूप : (शंकर से) चाय लीजिए।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

रामस्वरूप : (गोपाल प्रसाद से) चाय लीजिए। आप?

गो. प्रसाद : बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

रामस्वरूप : आपने तो कुछ खाया ही नहीं, चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बताएँ, वह मक्खन..

गो. प्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं। और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हँ...हँ (मेज़ को एक तरफ़ सरका देते हैं। फिर अंदर से दरवाज़ें की तरफ़ मुँह कर ज़रा ज़ोर से) अरे, ज़रा पान भिजवा देना...! ...सिगरेट मँगवाऊँ?

गो. प्रसाद : जी नहीं!

(पान की तश्तरी हाथों में लिए उमा आती है। सादगी के कपड़े। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपाल प्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखे छिपाकर उसे ताक रहे हैं।)

रामस्वरूप : ...हँ...हँ...यही,...हँ...हँ, आपकी लड़की है। लाओ बेटी पान मुझे दो। (उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है। और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते हैं।)

(गोपाल प्रसाद और शंकर-एक साथ) चश्मा!

रामस्वरूप : (ज़रा सकपकाकर) जी, वह तो...वह...पिछले महीनें में इसकी आँखें दुखनी आ गई थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गो. प्रसाद : पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ?

रामस्वरूप : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज़ किया न।

गो. प्रसाद : हूँ। (संतुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी।

(उमा बैठती है।)

गो.प्रसाद : चाल में तो कुछ खराबी नहीं। चेहरे पर भी छवि है।...हाँ कुछ गाना-बजाना सीखा है?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' गानी शुरू कर देती है। स्वर में ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।)

© SCERT not to be republished

रामस्वरूप : क्यों, क्या हुआ? गाने को पूरा करो उमा।

गो. प्रसाद : नहीं-नहीं साहब, काफ़ी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

(उमा सितार रखकर अंदर जाने को उठती है।)

गो. प्रसाद : अभी ठहरो, बेटी।

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठी रहो, उमा! (उमा बैठती है।)

गो.प्रसाद : (उमा से) तो तुमने पेटिंग-वेटिंग भी..

उमा : (चुप)

रामस्वरूप : हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। यह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।

गो. प्रसाद : हूँ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह?

रामस्वरूप : सिलाई तो सारे घर की इसी के ज़िम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीज़ें भी। हँ...हँ...हँ।

गो. प्रसाद : ठीक।...लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं?

(उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा चुप है उसी तरह गर्दन झुकाए। गोपाल प्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।)

रामस्वरूप : जवाब दो, उमा। (गोपाल प्रसाद से) हँ-हँ, ज़रा शरमाती है, इनाम तो इसने...

गो.प्रसाद : (ज़रा रूखी आवाज़ में) ज़रा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

रामस्वरूप : उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न।

उमा : (हलकी लेकिन मज़बूत आवाज़ में) क्या जवाब दूँ बाबू जी! जब कुर्सी-मेज़ बिकती है तब दुकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ़ खरीदार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा है, वरना..

रामस्वरूप : (चौंककर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा!

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी!...ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आए हैं, इनसे पूछिए कि क्या लड़कियों का दिल नहीं होता? क्या उनको चोट नहीं लगती? क्या बेबस भेड़-बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भालकर...?

गो.प्रसाद : (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज़्ज़त उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा : (तेज़ आवाज़ में) जी हाँ, और हमारी बेइज़्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और ज़रा अपने इन साहबज़ादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाए गए थे!

शंकर : बाबू जी, चलिए।

गो.प्रसाद : लड़कियों के होस्टल में?...क्या तुम कालेज में पढ़ी हो? (रामस्वरूप चुप)

© SCERT not to be republished

उमा : जी हाँ, कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज़्ज़त, अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

रामस्वरूप : उमा, उमा?

गो.प्रसाद : (खड़े होकर गुस्से में) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी.ए. पास है और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ़ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए...मेरी छड़ी कहाँ है? मैं चलता हूँ (बेंत ढूँढ़कर उठाते हैं।) बी.ए. पास? उफ़्फ़ोह! गज़ब हो जाता! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो... (दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।)

उमा : जी हाँ, जाइए, ज़रूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर ज़रा यह पता लगाइगा कि आपके लाड़ले बेटे की रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं-यानी बैकबोन, बैकबोन! (बाबू गोपाल प्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना)

प्रेमा : उमा, उमा...रो रही है!

(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।)

रतन : बाबू जी, मक्खन...

(सब रतन की तरफ़ देखते हैं और परदा गिरता है।)

प्रश्न-

1. रामस्वरूप और गोपाल प्रसाद बात-बात पर ''एक हमारा ज़माना था...'' कहकर अपने समय की तुलना वर्तमान समय से करते है। इस प्रकार की तुलना करना कहाँ तक तर्कसंगत है?
2. रामस्वरूप का अपनी बेटी को उच्च शिक्षा दिलवाना और विवाह के लिए छिपाना, यह विरोधाभास उनकी किस विवशता को उज़ागर करता है।
3. अपनी बेटी का रिश्ता तय करने के लिए रामस्वरूप उमा से जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा कर रहे हैं, वह उचित क्यों नहीं है?
4. गोपाल प्रसाद विवाह को 'बिज़नेस' मानते हैं और रामस्वरूप अपनी बेटी की उच्च शिक्षा छिपाते हैं। क्या आप मानते हैं कि दोनों ही समान रूप से अपराधी हैं? अपने विचार लिखें।
5. शंकर जैसे लड़के या उमा जैसी लड़की-समाज को कैसे व्यक्तित्व की ज़रूरत है? कारण बताइए।
6. 'रीढ़ की हड्डी' शीर्षक की सार्थकता स्पस्ट कीजिए।
7. इस एकांकी का क्या उद्देश्य है? लिखिए।

© SCERT not to be republished

3 माटी वाली

- विद्यासागर

शहर के सेमल का तप्पड़ मोहल्ले की ओर बने आखिरी घर की खोली में पहुँचकर उसने दोनों हाथों की मदद से अपने सिर पर धरा बोझा नीचे उतारा। मिट्टी से भरा एक कंटर। माटी वाली। टिहरी शहर में शायद ऐसा कोई घर नहीं होगा जिसे वह न जानती हो या जहाँ उसे न जानते हों, घर के कुल निवासी, बरसों से वहाँ रहते आ रहे किराएदार, उनके बच्चे तलक। घर-घर में लाल मिट्टी देते रहने के उस काम को करने वाली वह अकेली है। उसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं। उसके बगैर तो लगता है, टिहरी शहर के कई एक घरों में चूल्हों का जलना तक मुश्किल हो जाएगा। वह न रहे तो लोगों के सामने रसोई और भोजन कर लेने के बाद अपने चूल्हे-चौके की लिपाई करने की समस्या पैदा हो जाएगी। भोजन जुटाने और खाने की तरह रोज़ की एक समस्या। घर में साफ़, लाल मिट्टी तो हर हालत में मौजूद रहनी चाहिए। चूल्हे-चौकों को लीपने के अलावा साल-दो साल में मकान के कमरों, दीवारों की गोबरी-लिपाई के लिए भी लाल माटी की ज़रूरत पड़ती रहती है। शहर के अंदर कहीं माटाखान है नहीं। भागीरथी और भीलांगना, दो नदियों के तटों पर बसे हुए शहर की मिट्टी इस कदर रेतीली है कि उससे चूल्हों की लिपाई का काम नहीं किया जा सकता। आने वाले नए-नए किराएदार भी एक बार अपने घर के आँगन में उसे देख लेते हैं तो अपने आप माटी वाली के ग्राहक बन जाते हैं। घर-घर जाकर माटी बेचने वाली नाटे कद की एक हरिजन बुढ़िया-माटी वाली।

शहरवासी सिर्फ़ माटी वाली को नहीं, उसके कंटर को भी अच्छी तरह पहचानते हैं। रद्दी कपड़े को मोड़कर बनाए गए एक गोल डिल्ले के ऊपर लाल, चिकनी मिट्टी से छुलबुल भरा कनस्तर टिका रहता है। उसके ऊपर किसी ने कभी कोई ढक्कन लगा हुआ नहीं देखा। अपने कंटर को इस्तेमाल में लाने से पहले वह उसके ऊपरी ढक्कन को काटकर निकाल फेंकती है। ढक्कन के न रहने पर कंटर के अंदर मिट्टी भरने और फिर उसे खाली करने में आसानी रहती है। उसके कंटर को ज़मीन पर रखते-रखते सामने के घर से नौ-दस साल की एक छोटी लड़की कामिनी दौड़ती हुई वहाँ पहुँची और उसके सामने खड़ी हो गई।

''मेरी माँ ने कहा है, ज़रा हमारे यहाँ भी आ जाना।''

''अभी आती हूँ।''

घर की मालकिन ने माटी वाली लड़की को अपने कंटर की माटी कच्चे आँगन के एक कोने पर उड़ेल देने को कह दिया।

''तू बहुत भाग्यवान है। चाय के टैम पर आई है हमारे घर। भाग्यवान आए खाते वक्त।'' वह रसोई में गई और दो रोटियाँ लेती आई। रोटियाँ उसे सौंपकर वह फिर अपनी रसोई में घुस गई।

माटी वाली के पास अपने अच्छे या बुरे भाग्य के बारे में ज़्यादा सोचने का वक्त नहीं था। घर की मालकिन के अंदर जाते ही माटी वाली ने इधर-उधर तेज़ निगाहें दौड़ाईं। हाँ, इस वक्त वह अकेली थी। उसे कोई देख नहीं रहा था। उसने फ़ौरन अपने सिर पर धरे डिल्ले के कपड़े के मोड़ों को हड़बडी में एक

झटके में खोला और उसे सीधा कर दिया। फिर इकहरा। खुल जाने के बाद वह एक पुरानी चादर के एक फटे हुए कपड़े के रूप में प्रकट हुआ। मालकिन के बाहर आँगन में निकलने से पहले उसने चुपके से अपने हाथ में थामी दो रोटियों में से एक रोटी को मोड़ा और उसे कपड़े पर लपेटकर गाँठ बाँध दी। साथ ही अपना मुँह यों ही चलाकर खाने का दिखावा करने लगी। घर की मालकिन पीतल के एक गिलास में चाय लेकर लौटी। उसने वह गिलास बुढ़िया के पास ज़मीन पर रख दिया।

''ले, सद्दा-बासी साग कुछ है नहीं अभी। इसी चाय के साथ निगल जा।''

माटी वाली ने खुले कपड़े के एक छोर से पूरी गोलाई में पकड़कर पीतल का वह गरम गिलास हाथ में उठा लिया। अपने होंठों से गिलास के किनारे को छुआने से पहले, शुरू-शुरू में उसके अंदर रखी गरम चाय को ठंडा करने के लिए सू-सू करके, उस पर लंबी-लंबी फूँकें मारीं। तब रोटी के टुकड़ों को चबाते हुए धीरे-धीरे चाय सुड़कने लगी।

''चाय तो बहुत अच्छा साग हो जाती है ठकुराइनजी।''

''भूख तो अपने में एक साग होती है बुढ़िया। भूख मीठी कि भोजन मीठा?''

''तुमने अभी तक पीतल के गिलास सँभालकर रखे हैं। पूरे बाज़ार में और किसी घर में अब नहीं मिल सकते ये गिलास।'' ''इनके खरीदार कई बार हमारे घर के चक्कर काटकर लौट गए। पुरखों की गाढ़ी कमाई से हासिल की गई चीज़ों को हराम के भाव बेचने को मेरा दिल गवाही नहीं देता। हमें क्या मालूम कैसी तंगी के दिनों में अपनी जीभ पर कोई स्वादिष्ट, चटपटी चीज़ रखने के बजाय मन मसोसकर दो-दो पैसे जमा करते रहने के बाद खरीदी होंगी उन्होंने ये तमाम चीज़ें, जिनकी हमारे लोगों की नज़रों में अब कोई कीमत नहीं रह गई है। बाज़ार में जाकर पीतल का भाव पूछो ज़रा, दाम सुनकर दिमाग चकराने लगता है। और ये व्यापारी हमारे घरों से हराम के भाव इकट्ठा कर ले जाते हैं, तमाम बर्तन-भाँडे। काँसे के बरतन भी गायब हो गए हैं, सब घरों से।''

''इतनी लंबी बात नहीं सोचते बाकी लोग। अब जिस घर में जाओ वहाँ या तो स्टील के भाँडे दिखाई देते हैं या फिर काँच और चीनी मिट्टी के।''

''अपनी चीज़ का मोह बहुत बुरा होता है। मैं तो सोचकर पागल हो जाती हूँ कि अब इस उमर में इस शहर को छोड़कर हम जाएँगे कहाँ!''

''ठकुराइन जी, जो ज़मीन-जायदादों के मालिक हैं, वे तो कहीं न कहीं ठिकाने पर जाएँगे ही। पर मैं सोचती हूँ मेरा क्या होगा! मेरी तरफ़ देखने वाला तो कोई भी नहीं।'' चाय खत्म कर माटी वाली ने एक हाथ में अपना कपड़ा उठाया, दूसरे में खाली कंटर और खोली से बाहर निकलकर सामने से घर में चली गई। उस घर में भी, 'कल हर हालत में मिट्टी ले आने' के आदेश के साथ उसे दो रोटियाँ मिल गईं। उन्हें भी उसके अपने कपड़े के एक दूसरे छोर से बाँध लिया। लोग जानें तो जानें कि वह ये रोटियाँ अपने बुड्ढे के लिए ले जा रही हैं। उसके घर पहुँचते ही अशक्त बुड्ढा कातर नज़रों से उसकी ओर देखने लगता है। वह घर में रसोई बनने का इंतज़ार करने लगता है। आज वह घर पहुँचते ही तीन रोटियाँ अपने बुड्ढे के हवाले कर देगी। रोटियों को देखते ही चेहरा खिल उठेगा बुड्ढे का।

साथ में ऐसा भी बोल देगी, ''साग तो कुछ है नहीं अभी।''

और तब उसे जवाब सुनाई दे देगा, ''भूख मीठी कि भोजन मीठा?''

उसका गाँव शहर के इतना पास भी नहीं है। कितना ही तेज़ चलो फिर भी घर पहुँचने में एक घंटा तो लग ही जाता है। रोज़ सुबह निकल जाती है वह अपने घर से। पूरा दिन माटाखान में मिट्टी खोदने, फिर विभिन्न स्थानों में फैले घरों तक उसे ढोने में बीत जाता है। घर पहुँचने से पहले रात घिरने लगती है। उसके पास अपना कोई खेत नहीं। ज़मीन का एक भी टुकड़ा नहीं। झोपड़ी, जिसमें वह गुज़ारा करती है, गाँव के एक ठाकुर की ज़मीन पर खड़ी है। उसकी ज़मीन पर रहने की एवज़ में उस भले आदमी के घर पर भी माटी वाली को कई तरह के कामों की बेगार करनी होती है।

नहीं, आज वह एक गठरी में बदल गए अपने बुड्ढे को कोरी रोटियाँ नहीं देगी। माटी बेचने से हुई आमदनी से उसने एक पाव प्याज़ खरीद लिया। प्याज़ को कूटकर वह उन्हें जल्दी-जल्दी तल लेगी। बुड्ढे को पहले रोटियाँ दिखाएगी ही नहीं। सब्ज़ी तैयार होते ही परोस देगी उसके सामने दो रोटियाँ। अब वह दो रोटियाँ भी नहीं खा सकता। एक ही रोटी खा पाएगा या हद से हद डेढ़। अब उसे ज़्यादा नहीं पचता। बाकी बची डेढ़ रोटियों से माटी वाली अपना काम चला लेगी। एक रोटी तो उसके पेट में पहले ही जमा हो चुकी है। मन में यह सब सोचती, हिसाब लगाती हुई वह अपने घर पहुँच गई।

उसके बुड्ढे को अब रोटी की कोई ज़रूरत नहीं रह गई थी। माटी वाली के पाँवों की आहट सुनकर हमेशा की तरह आज वह चौंका नहीं। उसने अपनी नज़रें उसकी ओर नहीं घुमाईं। घबराई हुई माटी वाली ने उसे छूकर देखा। वह अपनी माटी को छोड़कर जा चुका था।

टिहरी बाँध पुनर्वास के साहब ने उससे पूछा कि वह रहती कहाँ है।

''तुम तहसील से अपने घर का प्रमाणपत्र ले आना।''

''माटी कहाँ से लाती हो?''

''माटाखान से लाती हूँ माटी।''

''वह माटाखान चढ़ी है तेरे नाम? अगर है तो हम तेरा नाम लिख देते हैं।''

''माटाखान तो मेरी रोज़ी है साहब।''

''बुढ़िया हमें ज़मीन का कागज़ चाहिए, रोजी का नहीं।''

''बाँध बनने के बाद मैं क्या खाऊँगी साहब?''

''इस बात का फैसला तो हम नहीं कर सकते। वह बात तो तुझे खुद ही तय करनी पड़ेगी।''

टिहरी बाँध की दो सुरंगों को बंद कर दिया गया है। शहर में पानी भरने लगा है। शहर में आपाधापी मची है। शहरवासी अपने घरों को छोड़कर वहाँ से भागने लगे हैं। पानी भर जाने से सबसे पहले कुल श्मशान घाट डूब गए हैं। माटीवाली अपनी झोपड़ी के बाहर बैठी है। गाँव के हर आने-जाने वाले से एक ही बात कहती जा रही है- ''गरीब आदमी का श्मशान नहीं उजड़ना चाहिए।''

प्रश्न-

1. माटी वाली के पास अपने अच्छे या बुरे भाग्य के बारे में ज़्यादा सोचने का समय क्यों नहीं था?
2. 'भूख मीठी कि भोजन मीठा' से क्या अभिप्राय है?
3. माटी वाली का रोटियों का इस तरह हिसाब लगाना उसकी किस मजबूरी को प्रकट करता है?
4. 'गरीब आदमी का शमशान नहीं उजड़ना चाहिए।' इस कथन का आशय स्पस्ट कीजिए।
5. 'विस्थापन की समस्या' पर एक अनुच्छेद लिखिए ।

4 किस तरह आखिरकार मैं हिंदी में आया

- शमशेर बहादुर सिंह

एक ऐसी बात- एक ऐसा जुमला- मुझसे कह दिया गया था कि मैं जिस हालत में था, उसी हालत में और जो कुछ पाँच-सात रुपये मेरे पास थे, उन्हीं को लेकर दिल्ली के लिए पहली ही बस जो मुझे मिलती थी, चुपचाप उसी पर चढ़ा और चल दिया।

तय कर लिया कि हाँ, अब मुझे जो भी काम करना है, करना शुरू कर देना चाहिए! दिल में, दिमाग में, यही समाया हुआ था कि वह काम-पेंटिंग है, इसी की शिक्षा अब मुझे लेनी है और फ़ौरन। उकील आर्ट स्कूल का नाम भर मैंने सुन रखा था दिल्ली में कहाँ है, यह पता न था...खैर, किस्सा मुख्तसर कि मेरा इम्तिहान लेकर और मेरा शौक देखकर मुझे बिला-फ़ीस के भर्ती कर लिया गया।

मैंने दो-तीन जगहों के बाद करोल बाग में लंबे-सड़क एक कमरा लिया और रोज़ाना वहाँ से कनाट प्लेस को सुबह की क्लास में पहुँचने लगा। रास्ते में कभी-कभी चलते-चलते ड्राइंग भी बनाता और कभी-कभी या साथ-साथ कविताएँ भी लिखता। इसका ज़रा भी खयाल या वहमों-गुमान न था कि ये कविताएँ कभी प्रकाशित होंगी। बस, मन की मौज या तरंग या कोई टीस-सी थी। चुनाँचे अंग्रेज़ी में-जैसी भी कुछ और उर्दू में (गज़ल के शेर) लिखता। और हर चीज़ और हर चेहरे को बगौर देखता कि उसमें अपनी ड्राइंग के लिए क्या तत्व खोज सकता हूँ या पा सकूँगा। आँखें थक जाती थीं, बहुत थक जाती थीं, मगर उस खोज का, हर चीज़ और चेहरे और दृश्य या स्थिति और गति का, अपना विशिष्ट आकर्षण कम न होता था। बस आँखों की ही मजबूरी था। कभी-कभी तेज बहादुर (मेरे भाई) कुछ रुपये भेज देते थे या साइनबोर्ड पेंट करके कुछ सहारा कर लेता था। मेरे साथ एक पत्रकार महोदय भी आकर रहने लगे थे; महाराष्ट्री; बेकार थे, तीस-चालीस के बीच में; वह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के होस्टलों का कभी-कभी ज़िक्र करते। 'इलाहाबाद, माई वीकनेस!'

अंदर से मेरा हृदय बहुत उद्विग्न रहता। यद्यपि अपने को दृश्यों और चित्रों में खो देने की मुझमें शक्ति थी; मगर अंदर से दुखी था। पत्नी का देहांत, टी.बी. से हो चुका था। दिल्ली की सड़कों पर अकेला। एकदम अकेला। और बस, घूमता-घूमता, कविताएँ घसीटता या स्केच; और अपनी खोली में आकर...अपना अकेलापन खोकर बोर होता।

मेरे कवि मित्र और बी.ए. के सहपाठी नरेंद्र शर्मा एम.ए. कर चुके थे और दिल्ली में एक बार उनसे मुलाकात भी हुई थी। पता नहीं वह कांग्रेस की राजनीति में संलग्न थे या कोई पत्रकारी वसीला खोज रहे थे। तभी एक बार बच्चन स्टूडियो में आए। क्लास खत्म हो चुकी थी। मैं जा चुका था। वह एक नोट छोड़ गए मेरे लिए। मुझे नहीं याद कि उसमें क्या लिखा था; मगर वह एक बहुत मुख्तसर-सा और अच्छा-सा नोट था। मैंने कहीं बहुत गहराई से अपने को कृतज्ञ महसूस किया। मेरी बहुत ही बुरी आदत है,

पत्रों का जवाब न देना। चाहे सैकड़ों जवाब बाज़ पत्रों के मन-ही-मन लिख-लिखकर हवा में साँस के साथ बिखराता रहूँ कई दिनों तक..! तो मेरे इस मौन की 'उपलब्धि' मेरी कृतज्ञता को व्यक्त करती हुई, एक कविता उभरी, अंग्रेज़ी में (अफ़सोस!), एक सॉनेट (वह भी अतुकांत मुक्तछंद में उफ.!) मगर उनको लिख लेने के बाद मैंने अपना जवाब उनको गोया भेज दिया।

कई महीने निकल गए और घटनाचक्र से मैं देहरादून आ गया। अपनी ससुराल की केमिस्ट्स एंड ड्रगिस्ट्स की दुकान पर कंपाउंडरी सीखने लगा और अच्छी-खासी महारत मुझे टेढ़े-मेढ़े, अजूबा इबारत में लिखे नुस्खों का पढ़ सकने की हो गई।

उसी वर्ष गुरुवार श्री शारदाचरण जी वकील ने देहरादून में ही पेंटिंग क्लास खोल ली थी, मेरे सौभाग्य से। (यह मेरे देहरादून लौटने का बहाना था) वह बंद हो गई तो मैं अकसर सोचता कि कविता और कला की दुनिया में-जो अब तक मेरी एकांत दुनिया रही थी, किसी से उसे गरज़ नहीं और अब भी बहुत कुछ वैसी ही बात है- अब मैं कहा हूँ? मेरी आंतरिक दिलचस्पियों से किसी को दिलचस्पी नहीं थी और मैं मुँह खोलकर कुछ नहीं कह सकता था किसी से। अपने से बड़ों का, गुरुजनों का अदब-लिहाज़, उनके सामने मुँह ने खोलना, शायद मेरी घुट्टी में पड़ा था। अपनी बहुत ही आंतरिक एकांतितता का मैं अभ्यासी तो हो गया था, मगर अंदर से बहुत खिन्न और दुखी था और परिस्थिति के साथ सामंजस्य बैठाने की कोशिश कर रहा था। कर्तव्य, जहाँ तक हो सकता था।...ऐसे में न जाने क्यों एक दिन, यों ही, वही सॉनेट मैंने बच्चन को पोस्ट कर दिया। बच्चन गर्मियों की छुट्टियों में (सन् 37) देहरादून आए, ब्रजमोहन गुप्त के यहाँ ठहरे। इत्तिफ़ाक देखिए कि यही (अब डॉक्टर) ब्रजमोहन गुप्त मेरे भाई के मित्र और उनके पिताजी मेरे पिताजी के पड़ोसी और मित्र रह चुके थे, देहरादून में ही। ब्रजमोहन के साथ बच्चन डिस्पेंसरी में आकर मुझसे मिले, एक दिन मेहमान भी रहे।

वह बच्चन की शुरू की धूम का ज़माना था। 'प्रबल झंझावात साथी! देहरादून के उसी साल की यादगार है, किस ज़ोर की आँधी आई थी, उफ़! कितने बड़े-बड़े पेड़ बिछे पड़े थे सड़कों पर, टीन की छतें उड़ गई थीं। और बच्चन उसी आँधी-बारिश में एक गिरते हुए पेड़ के नीचे आ जाने से बाल-बाल बचे थे! (हम सबका सौभाग्य) आज मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि जो तूफ़ान उनके मन और मस्तिष्क की दुनिया में गुज़र रहा था वह इससे भी कहीं प्रबल था। पत्नी-वियोग हाल ही में हुआ था। और कैसी पत्नी का वियोग! जो इस मस्त नृत्य करते शिव की उमा थी ...आत्मा से अर्द्धांगिनी। निम्न मध्य वर्ग से सन् 30 के भावुक आदर्शों और उत्साहों और संघर्षों की युवा संगिनी! मैं कल्पना ही कर सकता हूँ कि वह कवि के लिए क्या कुछ न रही होगी! एक निश्चल कवि धनी, वाणी का धनी। हृदय मक्खन, संकल्प फ़ौलाद। ऐसे व्यक्ति की साथी।

एक और बरखा की याद आ गई। इस देहरादून की-सी नहीं। मगर भरी बरसात की झमाझम। बरखा, इलाहाबाद की। गाड़ी पर पहुँचना था। रात का वक्त। मेज़बान इसरार कर रहे हैं, ''भाई, इस वक्त कुली न ताँगा, कैसे जाओगे? सुबह तक रुक जाओ!'' मगर नहीं। बच्चन ने बिस्तर काँधे पर रखा और स्टेशन की तरफ़ रवाना हो गए। जहाँ पहुँचना था वक्त पर पहुँचे।

इलाहाबाद मुझे बच्चन ही खींचकर ला सकते थे। कोई इस संभावना की कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैं स्वयं नहीं। और उस पर मैं बच्चन को तब जानता भी कितना था! बराय नाम। मगर उस परिचय के जितने भी क्षण थे सटीक थे। थे वो मात्र क्षण ही। आजकल की तरह ही, मैं बहुत कम कहीं आता-जाता या किसी से मिलता-जुलता था।

मुझे इसकी कभी कोई ज़रूरत-सी न महसूस हुई- शायद ऐसा वहम मुझे था, जो वहम ही था कि मेरी एकांत की दुनिया में मेरे साथ चलने वाला कोई नहीं है- और क्यों हो? खैर....

ये '36-'37, '37-'38 साल थे।

...जी हाँ । तो बच्चन ने मुझसे कहा, ''तुम यहाँ रहोगे तो मर जाओगे। चलो इलाहाबाद और एम.ए. करो..'' इत्यादि। और हमारी दुकान पर बैठने वाले देहरादून के प्रसिद्ध डाक्टर मुझसे कह रहे थे, ''तुम इलाहाबाद जाएगा ते मर जाएगा!'' मगर मैं तो देख चुका था कि फेफड़े के मरीज़ों के लिए, गरीब-गुरबा के लिए, वह क्या नुस्खा लिखते थेः 'कैल्शियम लैक्टेट, थ्री टाइम्स अ-डे।' कैल्शियम लैक्टेट उन दिनों दो आने मे एक आउंस आता था। मैं अपने दिल में बेफ़िक्र था।

इलाहाबाद आया, तो बच्चन ने क्या किया? बच्चन के पिता मेरे लोकल गार्जियन के खाने में दर्ज हुए। उन्होंने उर्दू-फ़ारसी की सूफ़ी नज़्मों का एक संग्रह बड़े स्नेह से मुझे दिया था। वह आर्शीवाद अर्से तक मेरे साथ रहा और एक अर्थ में अब भी है। और बच्चन ने एम.ए. प्रीवियस और फ़ाइनल के दोनों सालों का ज़िम्मा लिया और कहा, ''देखो जब भी तुम इस काबिल हो जाओ, (यानी तुम्हारी नौकरी लग जाए), तब वापस कर देना। चिंता मत करो।'' न इस काबिल हुआ, और न मैंने चिंता की।

बच्चन का प्लान यह था कि मैं किसी तरह एक काम का आदमी बन जाऊँ। उनके स्वयं अंग्रेज़ी में फाइनल कर लेने- दस साल की मास्टरी के बाद- और बी.टी. कर लेने के साथ-साथ मैं भी यूनिवर्सिटी से डिग्री लेकर फ़ारिग हो जाऊँ! ताकि कहीं पैर जमाकर खड़ा हो सकूँ। सो कहाँ होना था! कहीं न कहीं यह बात, पिता जी की सरकारी नौकरी को देखकर, मेरे दिल में बैठ गई थी कि नौकरी नहीं करनी है। मैंने कभी कोई तर्क-वितर्क अपने-आपसे नहीं किया। मेरा ख्याल है और अब मैं साफ़-साफ़ देखता हूँ और कह सकता हूँ कि यह बस, घोंचूपने की हद थी। (और,पलायन)

हिंदू बोर्डिंग हाउस के कॉमन रूम में एक सीट मुझे फ्री मिल गई थी और पंत जी की सहज कृपा से (मैं कभी नहीं भूलूँगा) इंडियन प्रेस से अनुवाद का काम। अगर सचमुच कोई बात मेरी समझ में आती थी तो वह एक यही कि अब मुझे कविता..हिंदी कविता गंभीरता से लिखनी है, जिससे कि मेरा रब्त बिलकुल छूट चुका था, भाषा और उसका शिल्प लगभग अजनबी-से हो चले थे। (आखिर हिंदी फ़र्स्ट फ़ार्म तो मेरी कभी रही नहीं थी, और घर में खालिस उर्दू के ही वातावरण में पला था। बी.ए. में भी उर्दू ही एक विषय लिया था) गज़ल मेरी भावुकता और आंतरिक अभावों का, अपने तौर पर, भली-बुरी एक मौन साथी थी। जैसी भी कुछ थी, अपनी थी!..शायद विषयांतर हो रहा था। मगर बच्चन मेरे जिस साहित्यिक मोड़, मेरे हिंदी के पुनर्संस्कार के प्रमुख कारण बने, मैं उसको यहाँ कुछ स्पष्ट करना चाहता हूँ। एक बार पहले भी सन् 33 में प्रीवियस का इम्तिहान दिए बिना ही यूनिवर्सिटी छोड़कर जा चुका

था, मगर तब तक कुछ रचनाएँ 'सरस्वती' और 'चाँद' में छप चुकी थीं और बच्चन ने 'अभ्युदय' में प्रकाशित मेरे एक सॉनेट को पसंद किया था और कहा था कि वास्तव में यह खालिस सॉनेट है (यद्यपि मुझे उनसे मतभेद है)। बहरलाल...तो सन् 37 में भाषा यानी हिंदी मुझसे छूट-सी चुकी थी। अभिव्यक्ति का माध्यम (मात्र और सदैव एकांततः अपने लिए) या तो अंग्रेज़ी था (अफ़सोस) या उर्दू गज़ल। हाँ, आज एक बात के लिए मैं अपने पछाँही, सीधे-सादे जाट परिवार और अपने बचपन के युग को धन्यवाद देता हूँ कि किसी भाषा को लेकर कभी कोई दीवार मेरे चारों तरफ़ खड़ी न हो सकी जो मेरे हृदय या मस्तिष्क को घेर लेती। अफ़सोस इतना ही है कि मैं जमकर कोई साधना भाषा या शिल्प की नहीं कर सका।

हिंदी ने क्यों मुझे उस समय अपनी ओर खींचा, इसका स्पष्ट कारण तो मेरी चेतना में निराला और पंत थे, उनसे प्राप्त संस्कार और इलाहाबाद-प्रवास और इलाहाबाद के हिंदी साहित्यिक वातावरण में मित्रों से मिलने वाला प्रोत्साहन। और हिंदी आज भी अपनी ओर खींचती है, बावजूद कम से कम मुझ जैसों को दुखी और विरक्त करने वाले अपने संकीर्ण, सांप्रदायिक वातावरण के।

(बच्चन इस वातावरण को आज मर्दानावार झेल ही नही रहे हैं, अपनी कविता में उच्च घोष से बार-बार बता भी रहे हैं कि यह वातावरण किसी भी जाति के सांस्कृतिक इतिहास में कैसी हीन-संकुचित मनःस्थिति का द्योतक होता है।)

मगर सन् 37 में मेरा हाल यह था, जैसे मैं फिर से तैरना सीख रहा हूँ..तीन सालों में बहुत कुछ भुला चुकने के बाद। मेरी अंतश्चेतना का यही स्वर था कि बच्चन शायद मुझे इसीलिए इलाहाबाद लाए हैं। वह मैदान में उतर चुके हैं...बस ज़रा आर्थिक रूप से निश्चिंत हो जाने की देर है, बहुत से बहुत एक साल..। और मुझे भी मैदान में उतरना है; अपने तौर पर।...मुझे भी कमर कस लेनी है। यही भावमात्र मेरे मन में स्पष्ट था और मुख्य। और कोई भाव नहीं।

मुझे याद है कि बच्चन ने एक नए स्टैंज़ा का प्रकार मुझे बताया था, 14 पंक्तियों, (सॉनेट नहीं!) और तुर्को का प्रभावकारी विन्यास, बीच-बीच की अनेक पंक्तियाँ अतुकांत! मुझे बहुत आकर्षक लगा था वह 'प्रकार'। मैंने तबीयत पर ज़ोर डालकर उस 'प्रकार' में एक रचना की थी। (बच्चन को नहीं मालूम। मालूम किसी को भी नहीं। क्योंकि कभी छपी नहीं।) बच्चन के लिए तो वह कविता का एक बंद था, मेरे लिए वह एक बंद पूरी कविता हो गई। मगर मैंने जो लिखा वह वस्तुतः सॉनेट से अलग रूप न ले सका! (बच्चन ने तब तक उस अपने नवीन फ़ार्म में कोई कविता न रची थी।) खैर...

बच्चन के 'निशा निमंत्रण' की कविताओं के रूप-प्रकार ने भी मुझे आकृष्ट किया। मैंने कुछ कविताएँ उस प्रकार लिखने की कोशिश कीं, मगर मुझे बहुत मुश्किल जान पड़ा। नौ पंक्तियाँ, तीन स्टैंज़ा। प्रायः सभी कवि उस छंद में लिख रहे थे। मुझसे नहीं चला। अगर्चे कुछ पंक्तियाँ इस अभ्यास में शायद बुरी नहीं उतरीं। 'निशा निमंत्रण के कवि के प्रति' मेरी एक कविता, जिस पर पंत जी के कुछ संशोधन भी हैं। ('रूपाभ' -काल में किए हुए)। मेरे पास आज भी, अप्रकाशित, सुरक्षित हैं। उसका भी बच्चन को पता नहीं!

© SCERT not to be republished

मैं अपने कोर्स की ओर ध्यान नहीं दे रहा था। इससे बच्चन को क्षोभ था। अतः मेरे मन में भी एक स्थायी संकोच। खैर।..दो साल पूरे करके, आखिर फ़ाइनल का इम्तिहान मैंने फिर भी नहीं ही दिया। बच्चन के साथ एक कवि-सम्मेलन में भी मैं उसी साल गया था। शायद गोरखपुर।

मैंने देखा कि कविता में मेरा नया अभ्यास निरर्थक नहीं गया; 'सरस्वती' में छपी एक कविता ने निराला जी का ध्यान आकृष्ट किया; कुछ निबंध भी मैंने लिखे। 'रूपाभ' आफ़िस में प्रारंभिक प्रशिक्षण लेकर मैं बनारस 'हंस' कार्यालय की 'कहानी' में चला गया। निश्चय ही हिंदी के साहित्यिक प्रांगण में बच्चन मुझे घसीट लाए थे।

आज मैं स्पष्ट देखता हूँ कि मेरे जीवन के इस भरपूर और कैसे आकस्मिक मोड़ के पीछे बच्चन की वह मौन-सजग-प्रतिभा रही है जो दूसरों को नया प्रातिभ जीवन देने की नैसर्गिक क्षमता रखती है। बच्चन से मैं हमेशा ही प्रायः दूर ही दूर रहता आया हूँ। यद्यपि दूर और नज़दीक की मेरी अपनी परिभाषा है। (और जिनके मैं अकसर बहुत 'नज़दीक' रहता आया, क्या उनसे बहुत दूर नहीं रहा?) बहुत-सी अनुपस्थित चीज़ें मेरे लिए उपस्थित ही के समान हैं और उपस्थित अनुपस्थित के। और मैं बहुत 'नज़दीक आने', बहुत मिलने-जुलने, चिट्ठी-पत्री आदि में विश्वास नहीं करता। बच्चन इसीलिए मेरे काफ़ी करीब रहे हैं मगर बेसिकली उसी तरह जैसे एक 'कवि' अपनी रचना के माध्यम से अपने करीब रहता है, अपने साथ रहता है, जिससे हम कभी नहीं मिलते या मिल सकते- युगों का व्यवधान होने के कारण। ये युग एक ही जगह प्रस्तुत भी हो सकते हैं। अतः मिलने या न मिलने का कोई अर्थ नहीं बैठता।...इसी तरह बच्चन अपने व्यक्तित्व में (जिसे कुल मिलाकर मैं उनकी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कविता से भी बड़ा आँकता हूँ) बहुतों की तरह, मेरे नज़दीक हैं और यह एक बिलकुल सहज और सामान्य और स्वाभाविक ही बात है। इसका सहज, स्वाभाविक और सामान्य होना मुझे अच्छा लगता है। मुझे बहुत अच्छा लगता है। (क्योंकि वह मुझे अपनी जगह पर मुक्त भी रखता है)

मेरा अनुमान है कि और भी सैकड़ों व्यक्तियों को ऐसा ही अनुभव हुआ होगा। अनुमान ही क्यों मुझको मालूम है कि हुआ है। मैं अपने इस अनुभव को विशिष्ट या विशेष नहीं मानता। वस्तुतः ऐसा कुछ विशिष्ट या विशेष दुनिया में नहीं हुआ करता। बच्चन जैसे लोग भी दुनिया में हुआ करते हैं और वह हमेशा ही ऐसे होते हैं। असाधारण कहकर मैं उनकी मर्यादा कम नहीं करना चाहता। मगर यह साधारण और सहज प्रायः दुष्प्राप्य भी है। बात अजब है, मगर सच है।

प्रश्न-

1. वह ऐसी कौन सी बात रही होगी जिसने लेखक को दिल्ली जाने के लिए बाध्य कर दिया?
2. लेखक को अंग्रेज़ी में कविता लिखने का अफ़सोस क्यों रहा होगा?
3. लेखक ने बच्चन के व्यक्तित्व के किन-किन रूपों को उभारा है?
4. बच्चन के अतिरिक्त लेखक को अन्य किन लोगों का तथा किस प्रकार का सहयोग मिला?
5. लेखक ने अपने जीवन में जिन कठिनाइयों को झेला है, उनके बारे में लिखिए।

शब्द संपदा

अनंत - जिसका अंत न हो
अनुकंपा - दया
अपरिसीम - असीमित
अपव्यय - फ़िज़ूलखर्ची
अभियोग - आरोप
अल्पव्यस - कम उम्र
अवमूल्यन - मूल्य गिरा देना
अवली - छोटा आँवला
अस्तगामी - डूबता हुआ
अस्मिता - अस्तित्व, पहचान
अहैतुक - अकारण, बिना किसी कारण के
आबशार - निर्झर, झरना
इतिहासवेत्ता - इतिहास का जानकार
ईषत - थोड़ा, कुछ-कुछ, आंशिक रूप से
उछाह - उत्सव, आनंद
उन्मत - मतवाला
उपनिवेश - वह विजित देश जिसमें विजेता राष्ट्र के लोग आकर बस गए हों
कंडे - गाय भैंस के गोबर से बने उपले जो इंधन के काम आते हैं।
कांजीहौस - मवेशीखाना, वह स्थान जहाँ लावारिस (काइन हाउस) जानवर रखे जाते हैं।
काबा - मुसलमानों का पवित्र स्थान
कारनै - कारण
किंकिणी - करधनी
कुलेल (कल्लोल) - क्रीड़ा
केलि - क्रीड़ा
कौड़ी न पाई - कुछ प्राप्त न हुआ
क्षरण - नाश
क्षीणवपु - दुबला पतला, कमज़ोर शरीर
खीनाँ - क्षीण हुआ खुलेगी साँकल बंद दूवार की- चेतना व्यापक होगी, मन मुक्त होगा
गंडा - मंत्र पढ़कर गाँठ लगाया हुआ धागा या कपड़ा
गण्य - गणनीय, सम्मानित
गदना - बनाना
गराँव - फुँदेदार रस्सी जो बैल आदि के गले में पहनाई जाती है।
गोई - जोड़ी
चिरी - फाड़ी हुई
चुवै - रिसता है
छद्म - बनावटी
जनमिया - जन्म लेकर
जूआ (जुआ) - बैलों के कंधे पर रखी जाने वाली लकड़ी
जेब टटोली - आत्मलोचन किया
झख मारना - मजबूर होना, वक्त बरबाद करना
टाटी - टट्टी, परदे से लिए लगाए हुए बाँस आदि की फट्टियों का पल्ला
टिटकार - मुँह से निकलने वाला टिक-टिक का शब्द
डाँड़ा - ऊँची ज़मीन
तात्कालिक - उसी समय का
तितल्ले - तीसरी मंजिल
थान - पशुओं के बाँधने की जगह
थुक्पा - सत्तू या चावल के साथ मूली, हड्डी और माँस के साथ पतली लेई की तरह पकाया हुआ खाद्य-पदार्थ
थूँनी - स्तंभ, टेक
थोङ्ला - तिब्बती सीमा का एक स्थान
दावानल - जंगल की आग
दोनों चिटें - जेनम् गाँव के पास पुल से नदी पार करने के लिए जोङ्पोन् (मजिस्ट्रट) के हाथ की लिखी लमयिक् (राहदारी) जो लेखक ने अपने मंगोल दोस्त के माध्यम से प्राप्त की
दिग्भ्रमित - रास्ते से भटकना, दिशाहीन
दुलीचा - कालीन,छोटा आसन
दोन्विवक्स्तो - स्पेनिश उपन्यासकार सार्वेतेज (17 वीं शताब्दी) के उपन्यास 'डॉन विवक्ज़ोट' का नायक, जो घोड़े पर चलता था।
धृष्ट - लज्जारहित, निःसंकोच

© SCERT not to be republished

नक्काशीदार - बेल-बूटे के काम से युक्त
निरचू - थोड़ा भी
निरापद - सुरक्षित
निराहार - बिना कुछ खाए-पिए
निर्वासन - देश निकाला
नैसर्गिति - सहज, स्वाभाविक
पनहिया - पशु बाँधने की रस्सी
पछाई - पालतू पशुओं की एक नस्ल
परमधाम - स्वर्ग
परमार्थ - दूसरों की भलाई
पराकाष्ठा - अंतिम सीमा
परितृप्ति - पूरी तरह संतोष प्राप्त करना
परिधान - वस्त्र
प्रगल्भ - वाचाल, बोलने में संकोच न करने वाला
प्रतिमान - मानदंड
प्रतिवाद - विरोध
प्रतिष्ठित - सम्मानित
प्रतिस्पर्धा - होड़
पलायन - दूसरी जगह चले जाना, भागना
प्राणपण - जान की बाजी
बटमार - रास्ते में यात्रियों का लूट लेने वाला
बालिंडा - छप्पर की मज़बूत मोटी लकड़ी
बिड़ाल - बिलाव
बूठा - बरसा
भग्नावशिष्ट - खंडहर
भाँडा फूटा - भेद खुला
मरकत - पन्ना नामक रत्न
मर्म भेदी - अतिदुखद, दिल को लगने वाला
मल्लयुद्ध - कुश्ती
मसलहत - हितकर
माझी - नाविक, ईश्वर, गुरू
मिथक - प्राचीन पुराकथाओं का तत्व, जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ को वहन करता है
मुकुलित - अधखिला
मुखातिब - संबोधित
यूथभ्रष्ट - समूह या झुंड से निकला या निकाला हुआ
रगेदना - खदेड़ना
रस्सी कच्चे धागे की - कमज़ोर और नाशवान सहारे
लहरिया - रंग-बिरंगी धारियों वाली विशेष प्रकार की साड़ी जो सामान्यतः तीज, रक्षाबंधन आदि त्यौहारों पर पहनी जाती है।
वर्चस्व - प्रधानता
वशीकरण - वश में करना
वाइस चांसलर - कुलपति
वाख - वाणी,शब्द या कथन
वादी - घाटी
विग्रह - अलगाव
विज्ञापति - प्रचारित/सूचित
विषाद - उदासी
वृंत - डंठल
व्याली - सर्पिणी
शती - सौ वर्ष का समय
शोख - चंचल
सनई - एक पौधा जिसकी छाल के रेशे से रस्सी बनाई जाती है।
समभावी - समानता की भावना
सरपत - घास-पात, तिनके
सर्वव्यापक - सबमें रहने वाला
साबिक़ा - वास्ता, सरोकार
सहिष्णुता - सहनशीलता
साहिब - स्वामी, ईश्वर
सुजान - चतुर, ज्ञानी
सुभर - अच्छी तरह भरा हुआ
सुरखाब - चक्रवाक पक्षी
सुरा - शराब
सुषुम सेतु - सुषुम्ना नाड़ी रूपी पुल, हठयोग में शरीर की तीन प्रधान नाड़ियों में से एक नाड़ी (सुषुम्ना) जो नासिका के मध्य भाग में स्थित है
सोंधी - सुंगठित, मिट्टी पर पानी पड़ने से उठने वाली गंध
सौंदर्य प्रसाधन - सुंदरता बढ़ाने वाली सामग्री
स्वान (श्वान) - कुत्ता
हरना - आकर्षिक करना
हरारत - उष्णता या गर्मी
हिमकर - चन्द्रमा
हिम-आतप - सर्दी की धूप
हुकृंति - हुंकार
हुजूम - जनसमूह, भीड़

© SCERT not to be republished